महेंद्रभटनागर की कविता-गंगा

(डा. महेंद्रभटनागर की काव्य-चेतना के विविध रचनाधर्मी आयाम)

❸

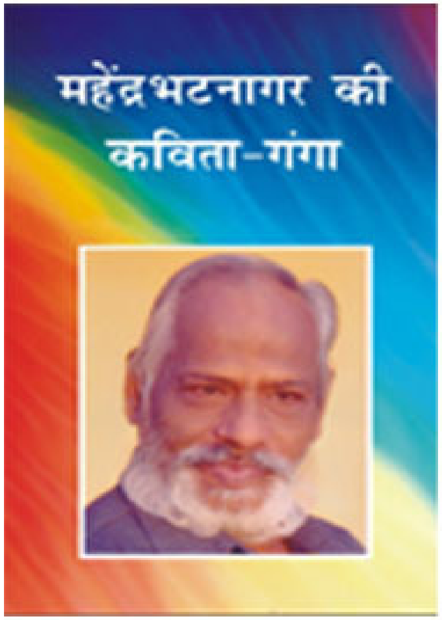

काव्य-कृतियाँ

1	संकल्प	1
2	जूझते हुए	45
3	जीने के लिए	93
4	आहत युग	145
5	अनुभूत क्षण	189
6	मृत्यु-बोध : जीवन-बोध	241
7	राग-संवेदन	281-331

●

12

संकल्प

रचना-काल सन् 19671971
प्रकाशन सन् 1977

कविताएँ

1 सहभाव
2 अन्तर्ध्वन्सक
3 बाधाएँ चुनौती हैं
4 यथा-पूर्व
5 एकस्थ से हट कर
6 अब नहीं
7 प्रतीक्षक
8 मेरा देश
9 नहीं तो
10 हमारे इर्द-गिर्द
11 एक नगर और रात की चीखें
12 आकस्मिक
13 बस एक बार !
14 निकष
15 नियति
16 अन्तःशल्य
17 आत्म-कथा
18 अनचहा
19 समाधि-लेख
20 ग़लतफ़हमियों का बोझ
21 प्रक्रिया
22 पुनर्वार
23 प्रतिज्ञा-पत्र
24 भले ही
25 स्व-रुचि
26 टूटा व्यक्तित्व
27 जीवनी
28 अंध-काल
29 आओ जलाएँ
30 समता का गान
31 होली
32 विश्व-श्री
33 जनतंत्र-आस्था
34 गणतंत्र-स्मारक
35 प्रण

●

(1) सहभाव

आओ
दूरियाँ
देशान्तरों की
व्यक्तियों की
अत्यधिक सामीप्य में
बदलें।
    बहुत मज़बूत
    अन्तर-सेतु
    बाँधें !
आओ
अजनबीपन
हृदय का
अनुभूतियों का
सांत्वना
आश्वास में
बदलें।
    परस्पर मित्रता का
    गगन-चुम्बी केतु
    बाँधें !
आओ
अविद्या-अज्ञता
धर्मान्तरों की
भिन्नता विश्वास की
समधीत सम्यक् बोध में
बदलें।
    सुनिश्चित
    विश्व-मानव-हेतु
    साधें !
1971

(2) अन्तर्ध्वन्सक

कौन है,
वह कौन है ?
जो
हमारे स्वप्नों में
    ख़लल डालता है,
हमारे
बनाये-सजाये
चित्रों को विकृत कर
    बदल डालता है,
उनकी विराटता को
बौना कर देता है,
उनकी उन्मुक्तता में
कुण्ठा भर देता है !

वह कौन है ?
वह दुस्साहसी कौन है ?
जो
हर संगत लकीर को
जगह-जगह से तोड़ कर
असंगत लिबास पहना देता है,

परिवेश की अर्थवत्ता छीन कर
अनर्गल वैशिष्ट्य से गहना देता है !
सही परिप्रेक्ष्य से
विस्थापित कर
हास्यास्पद भूमिकाओं की
चितकबरी प्लास्टर झड़ी
दीवारों पर
उल्टा टाँग देता है !

हमारे विश्वासों की
जीवन्त प्रतिमाओं को
खण्डित कर
कोलतारी स्वाँग देता है !

यह
किसका अट्टहास है ?
चारों ओर लहराते
नागफाँस हैं !

पर, सावधान !
मैं
इतिहास को दोहराने नहीं दूँगा,
आतताइयों को
निरीह लाशों को रौंदते
विजय-गान गाने नहीं दूँगा !

इन स्वप्नों की
इन चित्रों की
गत्यात्मकता,
अनुभूत-सिद्ध वास्तविकता

दूर-पास फैले
असंख्य-अदृश्य
भेदियों के जालों को
                तोड़ेगी,
मानव-मानव के बीच
पहली बार
    सच्चा रिश्ता जोड़ेगी !
1967

(3) बाधाएँ : चुनौती हैं!

बाधाएँ
निरुत्साहित नहीं करतीं हमें,
प्रतिक्षण बनातीं
बल सजग।
कठिनाइयों के सामने
पग डगमगाते हैं नहीं,
प्रत्युत्
लगा कर पंख बिजली के
धरा-आकाश का विस्तार लेते नाप !
बाधाएँ
'विकट, दुर्लंध्य, अविजित'
है निरा अपलाप !

बाधाएँ
बनातीं परमुखापेक्षी नहीं हमको,
बाधाएँ
बनाती हैं न किंचित दीन
उद्यमहीन हमको।

वे जगातीं
सुप्त अन्तर-शक्तियाँ सारी
न भय रहता, न लाचारी !

कौंधती बिजली सबल तन में
उभरते दृढ़ नये संकल्प मन में !

बाधाएँ : चुनौती हैं !
इन्हें स्वीकारना
पर्याय :
मानवता-महत्ता का !

इन्हें स्वीकारना
उद्घोष :
जीवन की चिरन्तन
ऊर्ध्व सत्ता का !
इन्हें स्वीकारना
पहचान :
तेजस्वी,
सतत गतिमान
मानव के पराक्रम की !
इन्हें स्वीकारना
अनुभूति :
चिर-परिचित
मनुज-इतिहास-प्रमाणित
अथक श्रम की !

बाधाएँ
हतोत्साहित नहीं करतीं कभी
बाधाहरों को !
वे बनातीं
और भी दृढ़
धारणाओं को।

कठिन के सामने मेधा
कभी होती नहीं दूषित,
वरन् उद्भावना उन्मेष से भर
और हो उठती प्रखर !

प्रत्येक बाधा
हीन होगी,
नष्टशून्य-विलीन होगी !
1970

(4) यथा-पूर्व

हमें
सामर्थ्य-क्षमता का
परिज्ञान कैसे हो ?

हमें
सम्भावनाओं का
अनुमान कैसे हो ?

हम अपरिणामी, तटस्थ, अयुक्त
स्थितियों में
जीते हैं !
1971

(5) एकस्थ से हटकर

स्थितियाँ
जब बदलती नहीं
गतिशीलता
अवरुद्ध होती है,
कहीं एकस्थ हो
आवेश का विस्तार खोती है।

स्थितियों का
बदलना / टूटना
बेहद ज़रूरी है,
भले ही
नयी स्थितियाँ
नितान्त विरुद्ध हों
संदिग्ध हों।
1971

(6) अब नहीं

अब सम्भव नहीं
बीते युगों की नीतियों पर
एक पग चलना,
निरावृत आज
शोषक-तंत्र की
प्रत्येक छलना।

अब नहीं सम्भव तनिक
बीते युगों की मान्यताओं पर
सतत गतिशील
मानव-चेतना को रुद्ध कर
बढ़ना।

सकल गत विधि-विधानों की
प्रकट निस्सारता,
किंचित नहीं सम्भव
मिटाना अब
बदलते लोक-जीवन की
नयी गढ़ना।

शिखर नूतन उभरता है
मनुज सम्मान का,
हर पक्ष नव आलोक में डूबा
निखरता है
दमित प्रति प्राण का,
नव रूप
प्रियकर मूर्ति में
ढल कर सँवरता है
सबल चट्टान का।
1967

(7) प्रतीक्षक

अभावों का मरुस्थल
लहलहा जाये,
नये भावों भरा जीवन
पुनः पाये,
    प्रबल आवेगवाही
    गीत गाने दो !

गहरे अँधेरे के शिखर
ढहते चले जाएँ,
उजाले की पताकाएँ
धरा के वक्ष पर
सर्वत्र लहराएँ,
    सजल संवेदना का दीप
    हर उर में जलाने दो !
    गीत गाने दो !

अनेकों संकटों से युक्त राहें
मुक्त होंगी,
हर तरफ़ से
वृत्त टूटेगा
कँटीले तार का
विद्युत भरे प्रतिरोधकों का,
प्राण-हर विस्तार का !

उत्कीर्ण ऊर्जस्वान
मानस-भूमि पर
    विश्वास के अंकुर
    जमाने दो !
    गीत गाने दो !

1970

(8) मेरा देश

प्रत्येक दिशा में
आशातीत
प्रगति के लम्बे डग भरता,
'वामन-पग' धरता
मेरा देश
निरन्तर बढ़ता है !
पूर्ण विश्व-मानव की
सुखी सुसंस्कृत अभिनव मानव की
मूर्त्ति
अहर्निश गढ़ता है !
मेरा देश
निरन्तर बढ़ता है !

प्रतिक्षण सजग
महत् आदर्शों के प्रति,
बुद्धि-सिद्ध
विश्वासों के प्रति।

मेरा देश
सकल राष्ट्रों के मध्य अनेकों
सहयोगों के,
पारस्परिक हितों के,
आधार सुदृढ़
निर्मित करता है !
तम डूबे
कितने-कितने क्षितिजों को
मैत्री की नूतन परिभाषा से
आलोकित करता है !
समता की
अनदेखी

अगणित राहों को
उद्घाटित करता है !

उसने तोड़ दिये हैं सारे
जाति-भेद औ वर्ण-भेद,
नस्ल भेद औ' धर्म-भेद।

सच्चे अर्थों में
मेरा देश
मनुज-गौरव को
सर्वोपरि स्थापित करता है !
मृतवत्
मानव-गरिमा को
जन-जन में
जीवित करता है !

मेरा देश
प्रथमतः
भिन्न-भिन्न
शासन-पद्धित वाले राष्ट्रों को
अपनाता है !
शांति-प्रेम का
अप्रतिम मंत्र
जगत में गुँजित कर
भीषण युद्धों की
ज्वाला से आहत
मानवता को
आस्थावान बनाता है !
संदेहों के
गहरे कुहरे को चीर
गगन में
निष्ठा-श्रद्धा के

सूर्य उगाता है !

उन्नति के
सोपानों पर चढ़ता
मेरा देश,
निरन्तर
बहुविध
बढ़ता मेरा देश !

प्रतिश्रुत है
नष्ट विषमता करने,
निर्धनता हरने !
जन-मंगलकारी
गंगा घर-घर पहुँचाने !
होठों पर
मुसकानों के फूल खिलाने,
जीवन को
जीने योग्य बनाने !
1970

(9) नहीं तो

यदि मेरे देश में
गाँधी और नेहरू जैसों ने
जन्म नहीं लिया होता
ते
हैवानियत के शिकंजे
हमारे हाथों-पाँवों में
कसे होते !
यहाँ
वहाँ
सभी जगह
मौत के सौदागर बसे होते !

हम
जो आज
तेज़ी से बढ़ते जाते हैं,
नये, मज़बूत और सुन्दर भारत को
फ़ौलादी दृढ़ता से
गढ़ते जाते हैं,
नयी रोशनी की किरणें
फैलाते
अज्ञान की अँधेरियों से
लड़ते जाते हैं;
घुटनों-घुटनों
फ़िरक़ापरस्ती की दलदल में
धँसे होते,

हम सब
बदरंग हो गये होते,
दिलों से
बेहद तंग हो गये होते !
हमारे एकता के स्वप्न सारे
टूटते,
पशुबल समर्थक
समृद्धि सारी
लूटते !
1970

(10) हमारे इर्द-गिर्द

मेरे देश में
ओ करोड़ों मज़लूमो !
तुम्हें
अभी फुटपाथों से
छुटकारा नहीं मिला,
खौलते ख़ून के समुन्दर में

तैरते-तैरते
किनारा नहीं मिला !
बीसवीं शताब्दी के
इस आँठवें दशक में भी
सिर पर
खुला आसमान है,
नीचे
नंगी धरती।
सूनी निगाहें
ठण्डी आहें
विकलांग निरीहता
सर्दी, बरसात, आँधी !

मोटे-मोटे
खादीपोश
बदकिरदार
व्यापारियों-पूँजीपतियों,
मकान-मालिकों,
कॉलोनी-धारियों,
वकील-नेताओं के
मुँह में
यथा-पूर्व
विराजमान है‘गाँधी’!
बँगलों और कोठियों में
दीवारों पर
टँगे हैं गाँधी !
(या सलीब पर लटके हैं गाँधी!)
तिकड़मी मस्तिष्क के
बद-मिज़ाज
नये भारत के ये ‘भाग्य-विधाता’
‘एम्बेसेडर’ में
धूल उड़ाते

मज़लूमों पर थूकते
मानवता को रौंदते
अलमस्त घूमते हैं,
किंचित सुविधाओं के इच्छुक
उनके चरण चूमते हैं !

मेरी पूरी पीढ़ी हैरान है !
नेतृत्व कितना बेईमान है !
1971

(11) एक नगर और रात की चीखें

मन्दिरों की घण्टियाँ बज रही हैं !
सैकड़ों श्रद्धालु
हाथ जोड़े खड़े होंगे
नत-मस्तक हो रहे होंगे।

वृक्षों, गुम्बदों, भवनों,
खपरैलों, टिनों पर
कुहर-कण पहने
अँधेरा उतरता चला आ रहा है,
जाड़े की शाम
सात बजे से ही गहरा गयी !
घरों के द्वार-वातायन
बंद हो गये !
सड़कों पर
हलकी पीली रोशनी फेंकते हैं
बिजली के खम्भे,
दो-एक स्कूटर
या मोटर साइकिलें
भड़भड़ाती हुई निकल जाती हैं,
कभी-कभी कहीं ढोल बज उठते हैं।
बस-स्टैण्ड पर

लाउड-स्पीकर अभी बोल रहा है
अमुक-अमुक जगह पर जाने वाले
यात्रियों को आगाह करता हुआ।

रात का ठण्डापन बढ़ता जाता है !
रात का सूनापन बढ़ता जाता है !

‘यह आकाशवाणी है,
रात के पौने-नौ बजे हैं।’
और
फिर सर्कस के शेर
दहाड़ने लगे
(ज़रूर दस बजने वाले होंगे।)
सोने से पहले
नींद की गफ़लत में
डूबने से पहले
एक भिखारी
चीखता है
‘दो-रोटी और दाल,
पेट का सवाल !
है कोई देने वाला
इतने बड़े-बड़े घरों में ?
बस, दो-रोटी और दाल,
मैं भूखा हूँ।’

किसी घर के द्वार नहीं खुलते,
कहीं से कोई आवाज़ नहीं आती।
भिखारी अड़ जाता है :
‘इस गली से
मैं
रोटी लिये बिना
नहीं जाऊँगा !’

और वह चीखता जाता है
‘दो-रोटी और दाल,
पेट का सवाल !’
उसकी चीख
सबको दहला देती है,
सुख-सुविधाओं को चौंका देती है !

(भिखारी यदि ख़ूनी बन जाये,
दरवाज़ा तोड़ कर अन्दर घुस आये!)

आतंक की परतें
चेहरों पर बिछने लगती हैं,
घरों की रोशनियाँ
बुझने लगती हैं,
दरवाज़ों पर ताले
झूलने लगते हैं !

भिखारी
चीखता रहता है,
अपनी शक्ति के बाहर
चीखता रहता है।

और जब
किसी दयालु के दरवाज़े ने
उसे कुछ शान्त किया,
उसके बुनियादी सवाल को
एक रात के लिए
हल किया,
सन्नाटा और मुखरित हो चुका था,
वृक्षों, गुम्बदों, भवनों,
खपरैलों, टिनों पर
कुहरा और संघनित हो चुका था !

रात
और ठण्डी और काली
हो चुकी थी,
रात
निहायत बेशर्म और नंगी
हो चुकी थी !
1967

(12) आकस्मिक

स्थूल निर्जीव पदार्थों की
प्रत्येक गति
नियति
कार्य-कारण-बद्ध है,
सृष्टि का प्रत्येक कम्पन
धीमा
अथवा विराट
प्राकृतिक नियमों से सिद्ध है।

पर,
संवेदनशील प्राणियों की
पारस्परिक
संगति
निकटता
आत्मीयता
मात्र एक संयोग है !

तभी तो
इतनी बड़ी दुनिया में
अरबों मनुष्यों की दुनिया में
करोड़ों लोग अकेले हैं,
किसी का साथ पाने के लिए
किसी को

हमसफ़र बनाने के लिए
      आकुल हैं,
      व्याकुल हैं !

आवश्यकताएँ हैं :
पर,
पूर्तियाँ नहीं !
अर्चनाएँ हैं :
पर,
मूर्तियाँ नहीं !

भटकनें हैं :
      बाट नहीं !
नदियाँ हैं :
      घाट नहीं !

सर्वत्र
तलाश-ही-तलाश है !
ज़िन्दगी :
डोलती
बोलती
लाश है !

हाथ आया स्वर्ण
जब
मिट्टी में बदल जाता है,
बड़ी कोशिशों से पाया
अपनाया
जब
पराया निकल जाता है !
तब
लगता है :

जीवन कारण-हीन है !
मनुष्य
सचमुच, दीन है !
      प्रतीक्षा करो !
      अनाचक की
      प्रतीक्षा करो !

जीवित सम्पर्क
बनाये नहीं जाते,
      बन जाते हैं !
मनचाहे स्वप्न
बुलाये नहीं जाते,
      स्वतः आते हैं !

ओ विश्व भर के
अभिशप्त मानवो !
प्रतीक्षा करो !

अचानक की
प्रतीक्षा करो !
1968

(13) बस, एक बार!

स्नेह-तरलित दो नयन
मुझको देख लें
बस,
एक बार !

दो
प्रणय-कम्पित हाथ
मुझको थाम लें
बस,

एक बार !

सर्पिल भुजाएँ दो
मुझको बाँध लें
बस,
एक बार,

दो
अग्निवाही होंठ
मुझको चूम लें
बस,
एक बार !
1968

(14) निकष

किसी मधु-गन्धिका के
प्यार की ऊष्मा-किरण
मुझको
छुए तो
      मोम हूँ !
किसी मुग्धा
चकोरी के
अबोध
अधीर
भटके
दो नयन
मुझ पर
पड़ें तो
      सोम हूँ !
1968

(15) नियति

मझधार में बहते हुए
बस, देखते जाओ
किनारे-ही-किनारे,
पर नहीं,
वे बन सकेंगे

एक दिन भी
तुम थके-हारे
अकेले के
सहारे !
क्योंकि वे अधिकृत,
तुम अवांछित !
सतत बहते रहो,
प्रतिकूलता
सहते रहो !
1968

(16) अन्तःशल्य

रह गये
कितने अदेखे फूल,
अन्तस में अजाने
हूलते हैं शूल !
1968

(17) आत्म-कथा

क्या जीता हूँ !
अनुदिन कड़वाहट पीता हूँ,
मधु का सागर लहराता है
पर,
कितना रीता हूँ !

सचमुच,
      क्या जीता हूँ ?
1968

(18) अनचहा

मैंने नहीं चाहा -
दृष्टि-पथ पर दूर तक
रंगीन सपनों के चरण
      न घूमें!

मैंने नहीं चाहा -
जीवन के गगन में
सावनी के स्वर
      न गूँजें!
रस-वर्षिणी
घन बदलिशँ
      न झूमें!

मैंने नहीं चाहा
मधु कल्पनाओं के
विफलता की थकन से
पंख जाएँ टूट,
यौवन
उमड़ती ज्वार की लहरें
                  न चूमे !
पर,
सब अनचहा होता गया,
स्वप्न सारे
हो गये विकलांग,
सावन की सरसता
                  खो गयी,
अनुरक्त अन्तस की

मधुरता जब
विषैली हो गयी !
1968

(19) समाधि-लेख

कोई नहीं है तुम्हारे लिए
कोई नहीं है किसी के लिए,
दुनिया निरी ख़ुदग़रज़ है !

मरण पर हमारे
कोई विकल बन
करुण गीत गाये
व आँसू बहाये,
मधुर याद में
      (ज़िन्दगी भर !)
सजल प्राण-दीपक जलाये,
यह सोचना
एक खाली मरज़ है !
दुनिया बड़ी ख़ुदग़रज़ है !

स्वयं को न दें
व्यर्थ
इतनी महत्ता,
समझ लें
उचित
भ्रम-रहित हो
स्व-अस्तित्व की
अर्थवत्ता,
इसमें नहीं कुछ हरज़ है !
जब कि
दुनिया निपट ख़ुदग़रज़ है !
1968

(20) ग़लतफ़हमियों का बोझ

हमारे पारस्परिक संबंधों को
बरसों के पनपते-बढ़ते रिश्तों को
निकटता और आत्मीयता को
ग़लतफ़हमी
अक्सर पुरज़ोर झकझोर देती है
तोड़ देती है,
हमें एक दूसरे के विपरीत
मोड़ देती है !

हमारे सौमनस्य का अतीत
झूठा बेमानी हो लेता है,
हमारे सद्भाव का इतिहास
महज़ एक स्वाँग साबित हो
सारे व्यतीत घटना-चक्रों को
अकल्पित अद्भुत सन्दर्भों की पीठिका में
प्रस्थापित कर देता है !

हम
अन्यथा के प्रति आश्वस्त हो
सचाई की व्याख्या
बदलने के लिए
विवश हो जाते हैं,
अँधेरे में
और अँधेरे में
और-और अँधेरे में
खो जाते हैं !

ग़लतफ़हमी
मानव-आस्था के मर्म को
निरन्तर विदलित करती है,

जीवन-रस को
एक और अनेक ग़लतफ़हमियाँ
निरन्तर खोखला कर
अवशोषित करती हैं !

ग़तलफ़हमियों का शिकार बनना
सचमुच
एक शाप है,
ग़लतफ़हमियों को बार-बार भोगना
सचमुच
एक विषम शाप-ज्वर संताप है !

न जाने
किन शापों के फलस्वरूप
मुझे
ग़लतफ़हमियों के तोहफ़े,
मिथ्या आरोपों
और लांछनों के तोहफ़े
ख़ूब मिले हैं,
जिन्हें
जीवन की पीठ पर लादे
मैं घूम रहा हूँ !
ग़लतफ़हमियों का यह गट्ठर
अपने आकार में
और कितना फैलेगा-बढ़ेगा ?
यह मेरी जिजीविषा के वेग को
और कितना रोकेगा ?

क्या सारे रिश्तों को तोड़ दूँ ?
ग़लतफ़हमियों के इस बोझ को
एक-बारगी फेंक दूँ ?
व्यक्ति और समाज की

चिन्ता से मुक्त
जीवन को
निर्जीव पदार्थ सत्ता से जोड़ दूँ ?
संवेदन का गला घोंट दूँ ?
1968

(21) प्रक्रिया

मैंने
जीवन का व्याकरण
नहीं पढ़ा,
शायद,
इसीलिए
सही अर्थों में
जीना नहीं आया !

आत्म-प्रकाशन में
असफल अभिव्यक्ति-सा
प्रभाव-शून्य बना रहा,
इसीलिए
रात-दिन
घर-बाहर
अनमना रहा !

मैंने
जीवन-जगत व्यवहार के
विशिष्ट शब्दों
शब्द-रूपों
और उनके प्रयोगों का
ज्ञान हासिल नहीं किया,
इसीलिए
तथाकथित समाज ने
मुझे अपने में

शामिल नहीं किया !
मैंने नहीं सीखा
व्यक्ति-व्यक्ति में
भेद करना,
स्थूल और सूक्ष्म
अन्तर-प्रणाली की
वैज्ञानिकता
मेरी समझ में नहीं आयी,
जो कुछ कहा
वह
व्याख्या की परिधि में
नहीं समाया,
शायद,
इसीलिए मेरा कथन
किसी को नहीं भाया !

मैंने
जीवन का व्याकरण
नहीं पढ़ा,
शायद,
इसीलिए
अन्यों की तरह
सुख-चैन का
जीना नहीं आया !

निरन्तर
जीवन की अभिधा में
पलता रहा,
लाक्षणिकता के
गूढ़ व्यंजना के
आडम्बर नहीं फैलाये,
बहु-प्रचलित कडवे तेल के दिये-सा

आले में
चुपचुप जलता रहा,

मुहावरेदानी के
रुपहले ट्यूब
तैल-लेपित दीवारों पर
नहीं रोशनाये,
शायद,
इसीलिए
समाज का मन-रंजन नहीं हुआ
वांछित आवर्जन नहीं हुआ !

दुनिया की चमक-दमक में
डूबा-इठलाया नहीं,
वक्र ताल पर
ध्वनि-सिद्ध कोई गीत
गाया नहीं,
अलंकार-सज्जित पात्र में
रीति-बद्ध ढंग से
जीवन का रस
पीना नहीं आया !

मैंने
जीवन का व्याकरण
नहीं पढ़ा,
शायद,
इसीलिए
निपुण विदग्धों के समकक्ष
जीना नहीं आया !
1969

(22) पुनर्वार

मैं
एक वीरान बीहड़
जंगल में रहता हूँ,
अहर्निश
निपट एकाकीपन की
असह्य पीड़ा
सहता हूँ !

मैंने
यह यंत्रणा-गृह
कोई
स्वेच्छा से नहीं वरा,
मैंने
कभी नहीं चाहा
निर्लिप्त
निस्संग
जीवन का यह
जँगलेदार कठघरा !

जिसमें
शंकाओं से भरा
सन्नाटा जगता है,
जीना
अर्थ-हीन अकारण-सा
लगता है !

समय-असमय
जब दहक उठते हैं
मुझमें
हिंस्र पशुता के

अग्नि-पर्वत,
प्रतिशोध-प्रतिहिंसा के
लावा नद
जब लहक उठते हैं
आहत
क्षत-विक्षत
चेतना पर,
तब यह
वीरान बीहड़ जंगल ही
निरापद प्रतीत होता है !

(सचमुच
कितना बेबस
मानव के लिए
अतीत होता है !)

यह गुंजान वन
यह अकेलापन
मेरी विवशता है !
मुझे
विवशता की पीड़ा
सहने दो,

दहने दो,
दहने दो !

जंगल जल जाएंगे,
लौह-कठघरे गल जाएंगे !

मैं आऊंगा
फिर आऊंगा,
निज को विसर्जित कर

सामूहिक चेतना का अंग बन
अन्तहीन भीड़ में
मिल जाऊंगा !

स्व के दंश जहाँ
तिरोहित हो जाएंगे,
या अवचेतना की
अथाह गहराइयों में
सो जाएंगे !
1969

(23) प्रतिज्ञा-पत्र

टूट
गिरने दो
पीड़ाओं के पहाड़
बार-बार
अमर्त्य व्यक्तित्व मैं
अविदलित रहूंगा !
आसमान पर
घिरने दो
वेगवाही
स्याह बदलियाँ,
गरजने दो
सर्वग्रही प्रचण्ड आँधियाँ
लौह का अस्तित्व मैं
अपराजित रहूंगा !

लक्ष-लक्ष
वृश्चिकों के
डंक-प्रहार,
उठने दो
अंग-अंग में

विष-दग्ध लहरें ज्वार
व्रतधर सहिष्णु मैं
अविचलित रहूंगा !
1970

(24) भले ही

भले ही
काटती हों
चेतना को,
दंश जैसी
ये तुम्हारी
डाह-संकेतक
उपेक्षा-बोधनी
दृग-भंगिमाएँ !

भले ही
सालती हों
मर्म को
उपहास-प्रेरित
ये तुम्हारी
अग्नि-शर-व्यंग्योक्तियों की
क्रूर-धर्मी यातनाएँ !
सामने प्रस्तुत
विकर्षण-युक्त प्रतिमाएँ !
इन्हें पहचानता हूँ,
आदि से इतिहास इनका
जानता हूँ।
है सही उपचार इनका
पास मेरे,
कुछ नहीं बनता-बिगड़ता
आज यदि
ठहरी रहें ये

क्षितिज घेरे !
1969

(25) स्व-रुचि

फोटो में मुझे
अपनी शक्ल नहीं भायी !
मैंने पुनः
बड़े उत्साह से
अपने चित्र खिंचवाये
भिन्न-भिन्न पोज़ दिये,
फोटोग्राफ़र के संकेतों पर
गम्भीरता कम कर मुसकराया भी,
चेहरे पर भावावेश लाया भी,
पर पुनः मुझे उन फोटुओं में भी
अपनी शक्ल नहीं भायी,
तनिक भी स्व-रुचि को
रास नहीं आयी !

पर, क्या वे शक्लें
मेरी नहीं ?
क्या वे बहुरंगी पोज़
मेरे नहीं ?

वस्तुतः
हम फोटो में यथार्थ आकृति नहीं,
अपने सौन्दर्य-बोध के अनुरूप
अपने को चित्रित देखना चाहते हैं,
अपने ऐबों को
गोपित या सीमित देखना चाहते हैं !
1969

(26) टूटा व्यक्तित्व

बचपन में
किसी ने यदि
न देखा
स्नेह-सिंचित दृष्टि से
अति चाव से,
और पुचकारा नहीं
भर अंक
वत्सल-भाव से,
तो व्यक्ति का व्यक्तित्व
निश्चित
टूटता है।

यौवन में
नहीं यदि
पा सका कोई
प्रणयिनी
संगिनी का
प्रेम :
निश्छल
एकनिष्ठ
अनन्य !
जीवन
शुष्क
बोझिल
मरुस्थल मात्र
तृष्णा-जन्य !
तो उस व्यक्ति का व्यक्तित्व
अन्दर और बाहर से
बराबर
टूटता है।

वृद्ध होने पर
नहीं देती सुनायी
यदि
प्रतिष्ठा-मान की वाणी,
न सुनना चाहता कोई
स्व-अनुभव की कहानी,
मूक
इस अन्तिम चरण पर
व्यक्ति का व्यक्तित्व
सचमुच,
चरमराता है
सदा को
टूट जाता है !
1969

(27) जीवनी

चित्र जो
अतीत धुन्ध में
समा गया
उसे
पुनः-पुनः उरेहना।

जो बिखर गया
जगह-जगह
व्यतीत राह पर
उसे
विचार कर समेटना।

जो समाप्त-प्राय
बार-बार
चाह कर
उसे सहेजना।

रीति-नीति
काव्य की नहीं !

जीवनी :
विगत प्रवाह,
जी चुके।
काव्य :
वर्तमान
वेगवान
जी रहे।
1969

(28) अंध-काल

सावधान पहरुओ !
सावधान !

छा रहे अनेक दैत्य
छीनने स्वतंत्रता मनुष्य की,
वेगवान अंधकार
लीलने किरण-किरण भविष्य की,
सावधान सैनिको !
सावधान !

आज घिर रहीं प्रगाढ़
रक्त-वर्षिणी भयान बदलियाँ,
व्योम में कड़क रहीं
विनाशिनी अधीर क्रूर बिजलियाँ,

विश्व-शान्ति रक्षको !
सावधान !
1967

(29) आओ जलाएँ

आओ जलाएँ
कलुष-कारनी कामनाएँ !

नये पूर्ण मानव बनें हम,
सकल-हीनता-मुक्त, अनुपम
आओ जगाएँ
भुवन-भाविनी भावनाएँ !

नहीं हो परस्पर विषमता,
फले व्यक्ति-स्वातंत्र्य-प्रियता
आओ मिटाएँ
दलन-दानवी-दासताएँ !

कठिन प्रति चरण हो न जीवन,
सदा हों न नभ पर प्रभंजन
आओ बहाएँ
अधम आसुरी आपदाएँ !
1967

(30) समता का गान

मानव-समता के रंगों में
आज नहा लो !

सबके तन पर, मन पर है जिन
चमकीले रंगों की आभा,
उन रंगों से आज मिला दो
अपनी मंद प्रकाशित द्वाभा,
युग-युग संचित गोपन कल्मष
आज बहा लो !

भूलो जग के भेद-भाव सब
वर्ण-जाति के, धन-पद-वय के,
गूँजे दिशि-दिशि में स्वर केवल
मानव महिमा गरिमा जय के,
मिथ्या मर्यादा का मद-गढ़
आज ढहा दो !

1967

(31) होली

नाना नव रंगों को फिर ले आयी होली,
उन्मत्त उमंगों को फिर भर लायी होली !

आयी दिन में सोना बरसाती फिर होली,
छायी, निशि भर चाँदी सरसाती फिर होली !

रुनझुन-रुनझुन घुंघरू कब बाँध गयी होली,
अंगों में थिरकन भर, स्वर साध गयी होली !

उर मे बरबस आसव री ढाल गयी होली,
देखो, अब तो अपनी यह चाल नयी हो ली !

स्वागत में ढम-ढम ढोल बजाते हैं होली,
होकर मदहोश गुलाल उड़ाते हैं होली !

1967

(32) विश्व-श्री

देश-देश की स्वतंत्रता अमर रहे !

प्राण से अधिक
अपार प्रिय हमें स्वतंत्रता,
देश-प्रेम के लिए
कहीं नियत न अर्हता,

लोक-तंत्र-भावना सदा प्रखर रहे !

विश्व के असंख्य जन
अभेद्य हैं, समान हैं,
भाव एक हैं, यदपि
अनेक राष्ट्र-गान हैं,
साम्य-कामना ज्वलंत प्रति प्रहर रहे !

त्याज्य : जो मनुष्य की
मनुष्यता दहन करे,
ग्राह्य : जो उदार
मानवीयता वहन करे,
सर्व-धर्म-प्रेम की प्रवह लहर रहे !

1967

(33) जनतंत्र-आस्था

जनतंत्र के उद्घोष से गुंजित दिशाएँ !

आज जन-जन अंग शासन का,
बढ़ गया है मोल जीवन का,
स्वाधीनता के प्रति समर्पित भावनाएँ !

अब नहीं तम सर उठाएगा,
ज्याति से नभ जगमगाएगा,
उद्देश्य-प्रेरित दृढ़ हमारी धारणाएँ ।

मूक होगी रागिनी दुख की,
मूर्त होगी कामना सुख की,
अब दूर होंगी हर तरह की विषमताएँ !

1967

(34) गणतंत्र-स्मारक

गणतंत्र-दिवस की स्वर्णिम
किरणों को मन में भर लो !

आलोकित हो अन्तरतम,
गूँजे कलरव-सम सरगम,
गणतंत्र-दिवस के उज्ज्वल
भावों को मधुमय स्वर दो !

आँखों में समता झलके,
स्नेह भरा सागर छलके,
गणतंत्र-दिवस की आस्था
कण-कण में मुखरित कर दो !

पशुता सारी ढह जाये,
जन-जन में गरिमा आये,
गणतंत्र-दिवस की करुणा-
गंगा में कल्मष हर लो !

1967

(35) प्रण

मानवी गरिमा सदा रक्षित-प्रतिष्ठित हो
प्रण हमारा !

भाग्य-निर्माता स्वयं हों हम,
शक्ति जनता की नहीं हो कम,
व्यक्ति की स्वाधीनता अपहृत न किंचित हो
प्रण हमारा !

एकता के सूत्र में बँधकर,
अग्रसर हों सब प्रगति-पथ पर,

धर्म-भाषा-वर्ण पर कोई न लांछित हो
प्रण हमारा !

दूर हो अज्ञान-निर्धनता
वर्ग-अन्तर-मुक्त मानवता,
अर्थ-अर्जित कुछ जनों तक ही न सीमित हो
प्रण हमारा !

1967

13

जूझते हुए

रचना-काल सन् 1972-1976

प्रकाशन सन् 1984

कविताएँ

1 कश-म-कश
2 कचनार
3 प्रियकर
4 संसर्ग
5 संस्पर्श
6 आमने-सामने
7 जन्म-दिन
8 सहपंथा
9 विफल
10 निस्संग
11 इन्तज़ार
12 निष्कर्ष
13 विक्षेप
14 गन्तव्य-बोध
15 विराम
16 सामर्थ्य-भर
17 स्थिति
18 आदमी
19 उत्तर
20 प्रतिरोध
21 पतन
22 विचित्र
23 त्रासदी
24 कुफ़्र
25 आह्वान
26 विश्वस्त
27 अनाहत
28 जनवादी
29 एकजुट
30 संक्रमण
31 मज़दूरों का गीत
32 श्रमजित्
33 वर्षान्त पर
34 विसंगति
35 प्रजातंत्र
36 लालसा
37 भोर
38 अ-तटस्थ
39 एबसर्ड कविता

40 श्रद्धांजलि
41 सर्वहारा का वक्तव्य
42 अभूतपूर्व
43 आश्वास
44 मुक्त-कंठ
45 संधान

(1) कश-म-कश

बरसों से नहीं देखा
सूर्योदय
सूर्यास्त
चाँद-तारों से भरा आकाश,
नहीं देखा
बरसों से नहीं देखा !

कलियों को चटकते,
फूलों को महकते
डालियों पर झूमते,
तितलियों-मधुमक्खियों को
चूमते !
बरसों से नहीं देखा !

मेह में न्हाया न बरसों से
पुर-जोश कोई गीत भी गाया
न बरसों से!

न देखे
एक क्षण भी
मेहँदी से महमहाते हाथ गदराए,
महावर से रँगे
झनकारते
दो - पैर
भरमाए !
न देखे
आह, बरसों से !
कुछ इस क़दर
उलझा रहा
ज़िन्दगी की कश-म-कश में

देखना
महसूसना
जैसे तनिक भी
था न वश में !

●

(2) कचनार

पहली बार
मेरे द्वार
रह-रह
गह-गह
कुछ ऐसा फूला कचनार
गदराई हर डार !

इतना लहका
इतना दहका
अन्तर की गहराई तक
पैठ गया कचनार !

जामुन रंग नहाया
मेरे गैरिक मन पर छाया
छज्जों और मुँडेरों पर
जम कर बैठ गया कचनार !

पहली बार
मेरे द्वार
कुछ ऐसा झूमा कचनार
रोम-रोम से
जैसे उमड़ा प्यार !
अनगिन इच्छाओं का संसार !
पहली बार
ऐसा अद्‌भुत उपहार !

●

(3) प्रियकर

इस बहार में
गुलाब !
क्यों उदास ?
बार-बार ले रहे उसाँस।
    है विकीर्ण
    क्यों नहीं
    विलास की सुवास ?

ओ गुलाब !
आज मत रहो उदास
इर क़दर उदास !
    दो मिठास प्राण को
    हुलास मन / उदार बन !

पुनीत प्यार से
सुधा विहार से
रहो प्रमोद-सिक्त
    पास-पास !
पूर्ण जब विकास
मत रहो उदास !

(4) संसर्ग

जब से
हुई पहचान
मूक अधरों पर
अयास बिछल रहे
कल गान !

देखा

एकाग्र पहली बार
बढ़ गया विश्वास,
मन पंख पसार
छूना चाहता आकाश !

(5) संस्पर्श

ओ पवित्रा !
मृदुल शीतल उँगलियों से
छू दिया तुमने
माथ मेरा
मुश्किलें
उस क्षण
गया सब भूल !

खिल गये उर में
हज़ार-हज़ार टटके फूल !

खो गये पथ के
अनेकानेक शूल-बबूल !

(6) आमने-सामने

जी भर
आज बोलेंगे,
परस्पर अंक में आबद्ध
सारी रात बोलेंगे,
जी भर
बात बालेंगे !

विश्वास की
सम-भूमि पर हम

एक-धर्मा
हीनता की ग्रंथियाँ
संदेह के निर्मोक खोलेंगे,
सहज निर्व्याज खोलेंगे !

जी भर
आज जी लेंगे,
सुधा के पात्र पी लेंगे !

(7) जन्म-दिन

जीवन-पुस्तिका का
एक पृष्ठ और
पूरा हुआ।
एक बरस
और जिया !

शुक्र है
मौत ने नहीं छुआ !
आँधियों के
बीच भी
जलता रहा दिया !

(8) सहपंथा

पार कर आये
बीहड़
ज़िन्दगी की राह
लम्बी राह,
साथ-साथ।

पगडंडियाँ

या राज-मार्ग प्रशस्त,
खाइयाँ
या पर्वतों की घूमती ऊँचाइयाँ,
पार कर आये
साथ-साथ!
ज़िन्दगी की राह !

एक पल भी
की न आह-कराह !
दीनता से दूर,
हीनता से दूर,
कितने ही रहे मजबूर!
नहीं कोई
शिकन आयी माथ !
पार कर आये
भयानक राह,
ज़िन्दगी की राह
साथ-साथ!

आँधियों की धूल से
या
चरण चुभते शूल से
रुके नहीं !
तपती धूप से,
गहरे उतरते
घन अँधेरे कूप से
थके नहीं !

तर-बतर
करते रहे
तय सफ़र,
थामे हाथ

बाँधे हाथ
    साथ-साथ।
पार कर आये
अजन-बी
ज़िन्दगी की राह
लम्बी राह !

(9) विफल

लहरों-सी उफ़नती
उर-उमंगें सो गयीं,
चहचहाती डाल सन्ध्या की
अचानक
मूक-बहरी हो गयी !
प्रतीक्षा-रत
सजग आँखें
विवश चुप-चुप
    रो गयीं !
निशि
हिम-कणों से सृष्टि
    सारी धो गयी !

(10) निस्संग

ठंडी रात,
सन्नाटा !
जब-तब कहीं कोई
    थरथरा उठता पेड़,
रह-रह
सनसना उठती
    हवा ।
अथवा
चीख पड़ता

दर्द में
    चकवा।

न कोई बात ।
गहरी
बहुत गहरी
एक ख़ामोशी,
अपूर अटूट बेहोशी
    शिथिल
    आविद्ध।
कुंठित मन
सिहरता तन
    विकल
दयनीय पक्षाघात।
    सन्नाटा !
न कोई बात,
ठंडी रात !

(11) इन्तज़ार

रात
ठंडी और लम्बी
जागते
कब तक रहेंगे ?

रात
गीली ओस-भीगी,
शीत का अभिशाप
कितना और...
चुप-चुप सहेंगे ?

थरथराता गात,

कुहरे में
झुके हैं पात,
अपनी
वेदना को और....
कब तक कहेंगे ?

(12) निष्कर्ष

ज़िन्दगी वीरान मरघट-सी,
ज़िन्दगी अभिशप्त बोझिल और एकाकी महावट-सी !
ज़िन्दगी मनहूसियत का दूसरा है नाम,
ज़िन्दगी जन्मान्तरों के अशुभ पापों का दुखद परिणाम !
ज़िन्दगी दोपहर की चिलचिलाती धूप का अहसास,
ज़िन्दगी कंठ-चुभती सूचियों का बोध तीखी प्यास !
ज़िन्दगी ठहराव, साधन-हीन, रिसता घाव
ज़िन्दगी अनचहा संन्यास, मात्र तनाव !

(13) विक्षेप

मन के राज्य में
देखे स्वप्न जो रंगीन,
मांसल कल्पनाओं में रहे जो लीन,
मिथ्या वासना अतिचार
समझा किये
सुख-स्वर्ग का संसार।
पृथ्वी का महत् वरदान,
सम्भव कामनाओं का
चरम सोपान।

जन्म सार्थकता
सतत उपभोग-मादकता।
अमित रस-सृष्टि

जीवन-दृष्टि।

किन्तु
जगत् यथार्थ
    कितना भिन्न !
सपनों में रचाया लोक
रेशम-सी नरम चिकनी
बुनावट कल्पनाओं की
    तनिक में छिन्न !

कोई
भाग्यशाली
शक्तिशाली
कुछ क्षणों को
कर सका साकार
    औचट
    या कि कर अपहार !
औरों के लिए
केवल
    विसंगति
    आत्म-रति।

(14) गन्तव्य-बोध

हमने
उस दिन
ब्राह्म-मुहूर्त में
बड़े उत्साह से
अपनी यात्रा .....अविच्छिन्न यात्रा
        शुरू की थी,
यह सोच कर
कि मंज़िल पर पहुँचेंगे

निश्चित पहुँचेंगे।

हमने
उस दिन
रात के धुँधियारे में
बड़े विश्वास से
अपनी यात्रा ..... निरन्तर यात्रा
शुरू की थी,
यह सोच कर
कि साहिल पर पहुँचेंगे
संशयहीन...पहुँचेंगे।

ऊबड़-खाबड़ राह से
गुज़रते हुए,
गहरे-गहरे गड्ढ़ों की
थाह लेते हुए
हम अपनी यात्रा पर
निश्चल मन से
चल पड़े थे।

माना कि
जगह-जगह
अनेक व्यवधान अड़े थे
खड़े थे,
टूटन थी
फिसलन थी।

हमारी गति को
आँधियों ने रोका,
बार-बार
वज्रवाही बादलों ने टोका !
पर, हम रुके नहीं,

वैपरीत्य के सम्मुख
झुके नहीं।

क्रमशः
हमारा पथ प्रशस्त हुआ;
और हम
एक दिन
धड़कते दिल से
पड़ाव पर पहुँचे !

थक कर चूर
शिथिल
मजबूर
जड़ता-बद्ध।

क्रमशः
अहसास जगता है :
मंज़िल अंत नहीं,
आधार है
प्रवेश-द्वार है
जीवन की रंगभूमि है
कर्मभूमि है !

उसे स्वप्न-भूमि समझने की
भूल क्यों की ?

इससे तो बेहतर था
उसी बिन्दु पर बने रहना
जहाँ से यात्रा शुरू की थी।

(15) विराम

कर चुकी ज़िन्दगी
दूरियाँ तय !

चीखती / हाँफ़ती
ज़िन्दगी कर चुकी
अनगिनत
ऊर्ध्व ऊँचाइयाँ
ग़ार गहराइयाँ तय !

थम गया
भोर का / शाम का
गूँजता शोर,
गत उम्र की राह पर
थम गया !
आह बन
शून्य में हो गया लय !
कर चुकी ज़िन्दगी
मंज़िलें तय !

(16) सामर्थ्य-भर

जीवन
मात्र एक यात्रा है,
अनन्त राह पर
अन्तहीन यात्रा है !

विश्रांति-हेतु
क्षण-भर रुकना
आगे बढ़ने का
केवल उपक्रम है।

मंज़िल दूर,
बहुत दूर,
समय कम,
बेहद कम है !

(17) स्थिति

समेटे सिमटता नहीं
बिखराव !
नहीं है दिशा का पता
भटकाव !
जटिल से जटिलतर हुआ
उलझाव !
हुआ कम न, बढ़ता गया
अलगाव !

(18) आदमी

आज
जंगल के
भयावह हिंस्र आदमखोर पशुओं से
सुरक्षित
आदमी।

ऋतुओं के
विनाशक तेवरों से
है न किंचित्
भीत, आशंकित व चिन्तित
आदमी।

प्रकृति के
नाना प्रकोपों से

स्वयं को,
अन्य जीवों को
बचाना जानता है
    आदमी।

शून्य की
ऊँचाइयों पर
जा पहुँचना
है सरल उसको।
सिन्धु की
गहराइयों की
थाह लेना
है सहल उसको।

किन्तु अचरज !
आदमी है
आदमी से आज
सर्वाधिक अरक्षित,
आदमी के ही
मनोविज्ञान से
बिल्कुल अपरिचित।

भयभीत
घातों से
    परस्पर।
रक्ताक्ष
आहत
क्रुद्ध
ज़हरी व्यंग्य बातों से
    परस्पर।

टूट जाता आदमी

आदमी के
क्रूर
मर्मान्तक प्रहारों से,
लूट लेता आदमी
आदमी को
छल-भरे
भावों-विचारों से।

आदमी
आदमी से आज
कोसों दूर है,
आत्मीयता से हीन
बजता खोखला
हर क़दम
सिर्फ़ ग़रूर है।

●

(19) उत्तर

नहीं किंचित् बनूंगा
दीन,
या
ग़मगीन।
    क्षति स्वीकारता हूँ !

धूर्त
गुप-चुप
रच रहे षड्यंत्र,
बैठे हैं लगाए घात,
कैसे कर लिया
तुमने
अनोखा फ़ैसला
सुन

एकतरफ़ा बात ?

तुमसे
है नहीं अनुनय-विनय
धिक्कारता हूँ !
यों कभी भी
हो न सकता हीन !
क्षति स्वीकारता हूँ !

अपने
चाटुकारों की
विगर्हित क्षुद्र
इच्छा-पूर्ति के हित,
कर दिया तुमने
क्षणिक अधिकार से वंचित ?
तुम्हारे
मसख़रे निर्लज्ज
गंदे खल घिनौने
रूप को
दुत्कारता हूँ !

जान लो
अच्छी तरह पहचान लो
होता नहीं इससे
तनिक भी क्षीण !
क्षति स्वीकारता हूँ !

(20) प्रतिरोध

विकास-राह रुद्ध ;
जाति-युद्ध।

वंश-दर्प
बन गया कराल काल-सर्प।
दंश
तीव्र दंश,
सृष्टि के महान् जीव का
अथाह भ्रंश।

क्षुद्र संकुचित हृदय
उगल रहा ज़हर
कि ढा रहा क़हर !

मनुष्यता लहू-लुहान,
जातुधान गा रहा
असार द्वेष-युक्त
जाति-गान।
क्रूर
गर्व-चूर,
सभ्यता-विहीन
आत्म-लीन ।

बढ़ो, बढ़ो !
पशुत्व के अधीन
इस मनुष्य के
उगे विषाण
और धारदार दाँत
तोड़ने !
अमानवीय
जात-पाँत तोड़ने,
समाज और व्यक्ति को
सशक्त एक सूत्र में
अटूट जोड़ने।

(21) पतन

देश में
विशाल रूप में
उमड़ रहा
उफ़न रहा
  जाति-द्वेष : धर्म-द्वेष
  वर्ण-भेद : जन्म-भेद
मैल ! मैल ! मैल !
गर्द ! गर्द ! गर्द !

तीव्र मानसिक तनाव
शत्रु-भाव।

है विषाक्त हर दिशा,
निगल रही विवेक को
अशुभ गहन घृणा-निशा।

सतर्क और भीत
व्यक्ति-व्यक्ति से।
हो रहा प्रतीत
लौट आ रहा
  अतीत !

हिंस्र जंगली,
ब-ख़ूब
चल रही
समाज में
तथाकथित कुलीन
  जाति-दर्प धाँधली।

मनुष्य :

जाति-धर्म-वर्ण-जन्म से विभक्त
दब रहा निरीह
मिट रहा अशक्त।
  शर्म ! शर्म ! शर्म !
  निंद्य ! निंद्य ! निंद्य !

मन-मुटाव
छल-कपट
दुराव।

सावधान !
धैर्यवान नौजवान !
जाति-द्वेष-भावना-प्रवाह से,
क्रूर जातिगत गुनाह से
सावधान !
वर्ण-जन्म धारणा
  प्रभाव से,
एकता-विनाशिनी
विलग-विचारणा
  प्रभाव से,
सावधान,
नौजवान !

●

(22) विचित्र

यह कितना अजीब है !
आज़ादी के
तीन-तीन दशक
बीत जाने के बाद भी
पाँच-पाँच पंचवर्षीय योजनाओं के
रीत जाने के बाद भी
मेरे देश का

आम आदमी ग़रीब है !
बेहद ग़रीब है !
यह कितना अजीब है !

सर्वत्र
धन का, पद का, पशु का
साम्राज्य है,
यह कैसा स्वराज्य है ?

धन, पद, पशु
भारत-भाग्य-विधाता हैं,
चारों दिशाओं में
उन्हीं का जय-जयकार,
उन्हीं का अहंकार
व्याप्त है,
परिव्याप्त है,
और सब-कुछ समाप्त है !

शासन
अंधा है, बहरा है,
जन-जन का संकट गहरा है !
(खोटा नसीब है !)
लगता है
परिवर्तन दूर नहीं,
क़रीब है !
किन्तु आज
यह सब
कितना अजीब है !

(23) त्रासदी

ग़रीब था
अछूत था
डर गया !

भूख से
मार से
मर गया !

शोक से
लोक से
तर गया !

(24) कुफ़्र

लाश
जल रही
मसान में
किसी ग़रीब की,
बद-नसीब की !

कुटुम्ब
स्तब्ध...सन्न,
विप्र अति प्रसन्न !
मृत्यु-भोज
ऐश-मौज !

किन्तु
नौजवान आज
ढोंग सब बहा
धता बता रहा,

पुरोहिती
मिटा रहा,
बदल रहा गरुड़-पुराण,
प्रेत-कर्म का विधान।

विप्र खिन्न,
चीखता
कलियुगी... कलियुगी !

वस्तुतः
यही
नये समाज की
विराट सुगबुगी !

⬣

(25) आह्वान

रहो मत मूक,
की नहीं तुमने
कहीं,
कोई चूक।
बोलो बात
बेलाग
खरी
दो-टूक।

सत्य को
तुमने सदा
सत्य कहकर ही
पुकारा।
इसमें
है नहीं अपराध
कोई भी

तुम्हारा।

किन्तु
जिसने सत्य को
हठधर्मिता से
झूठ ठहराया,
वास्तविकता की
उपेक्षा की,
वंचना का धर्म
अपनाया

उस धूर्त के सम्मुख
मत रहो खामोश !
अभिव्यक्त कर आक्रोश
गरजो,
पुरज़ोर गरजो !
अनीति-विरुद्ध
प्रज्ञा-प्रबुद्ध !

⬣

(26) विश्वस्त

सतत संघर्ष-रत
सर्वहारा,
ज़िन्दगी
बदली नहीं।
अडिग अनथक अकेला
सर्वहारा,
स्थिति
यथावत्
सुधरी नहीं, सँभली नहीं।

व्यवस्था को

निरन्तर
और अंतिम साँस तक
दलित देगा चुनौती,
याद रक्खो
तड़पती घायल
लहू-मुख चीखती
जनता नहीं सोती !

विद्रोह का संकल्प
मर्मान्तक प्रहारों से
कम नहीं होता,
प्रतिबद्ध को
क्षति का, पराजय का
ग़म नहीं होता !

आवेश का सैलाब
आएगा !
पाशव अमानुष वर्ग के
मज़बूत दुर्गों को
ढहाएगा !

●

(27) अनाहत

चक्रवातों के
थपेड़ों से घिरा
इंसान,
बन गया चट्टान !

जूझता है
बार-बार,
बुलन्द हिम्मत से
सुदृढ़

आयत्त आस्थावान !

कर रहा पहचान
घातों से
प्रहारों से
गरजती
अग्नि-धारों से,
नहीं हैरान।

बढ़ता गया
अन्तिम विजय
विश्वास,
गढ़ने
नया इतिहास।

अपराजेय
जीवन का
अदम्य
प्रबल
मनोबल,
फूँकता जंगल,
बनाता
ज़िन्दगी का
नव धरातल।

●

(28) जनवादी

अनुचित करेंगे नहीं,
अनुचित सहेंगे नहीं!

अधिकार-मद-मत्त
सत्ता-विशिष्टो !

तुम्हारी सफल धूर्तता
और चलने न देंगे।

परलोक
या
लोक-कल्याण के नाम पर
व्यक्ति को
और छलने न देंगे।

मानव
अनाचार-नरकाग्नि में
अब दहेंगे नहीं।
स्वैरवर्ती
निरंकुश
नये विश्व में
शेष
निश्चित रहेंगे नहीं।

(29) एकजुट

मिलेगी
हमें जीत हरदम,
मिला कर
चलेंगे
क़दम से क़दम !
समता समर्थक
जनवाद साधक
अंतिम चरण तक
रहेंगे समर-रत,
न होंगे कभी नत !
बढ़ेंगे
मिला कर

क़दम से क़दम,
एकजुट शक्ति
विश्वास
होगा न कम !

(30) संक्रमण

यह नहीं होगा
बंदूक की नोक
सचाई को दबाये रखे,
आदमी को
आततायी के पैरों पर
झुकाये रखे,
यह नहीं होगा !

पशुता की गुलामी
अनेकों शताब्दियाँ
ढो चुकी हैं,
लेकिन अब
ऐसा नहीं होगा !

यातनाओं की किरचें
भोथरी हो चुकी हैं,
क्या तुम नहीं देखते
क्रूर जल्लादों की
वहशी योजनाओं की
बुनियादें हिल रही हैं ?
मौत की
काल-कोठरी बने
हर देश को
ज़िन्दगी की
हवा और रोशनी

मिल रही है !

घिनौनी साज़िशों का
पर्दा उठ गया है,
सारा माहौल ही
अब तो नया है !

(31) मज़दूरों का गीत

मिल कर क़दम बढ़ाएँ हम
जय, फिर होगी वाम की !

शोषित जनता जागी है
पीड़ित जनता बाग़ी है
आएँ, सड़कों पर आएँ,
क्या अब चिंता धाम की !

ना यह अवसर छोड़ेंगे
काल-चक्र को मोड़ेंगे
शक्लें बदलेंगे, साथी
मूक सुबह की, शाम की !

नारा अब यह घर-घर है
हर इंसान बराबर है
रोटी जन-जन खाएगा
अपने-अपने काम की !

झेलें गोली सीने से
लथपथ ख़ून-पसीने से
इज़्ज़त कभी घटेगी ना
'मेहनतकश' के नाम की !

(32) श्रमजित्

घर-घर नया सबेरा लाने वाले हम
दुनिया को रंगीन बनाने वाले हम !

कलियों को मधु-गंध दिलाने वाले हम
कंठों में नव-गान बसाने वाले हम !

पैरों में झनकार भरी हमने-हमने
जीवन में रस-धार भरी हमने-हमने !

आँखों में सुन्दर स्वप्न सजाये हमने
भोर बसन्त-बहार भरी हमने-हमने !

हम जीवन जीने योग्य बनाने में रत
'श्रम ही है पुरुषार्थ' हमारा ऐसा मत !

(33) वर्षान्त पर

"प्रिय भाई,
बधाई !

नव-वर्ष
सत्फल भाग्यशाली हो,
अत्यधिक सुख दे
अमित सम्पन्नता दे
विपुल यश दे
रस-कलश दे !"

मित्रों की
सहज

या
औपचारिक
ये अनेकानेक
मंगल कामनाएँ
और सुन्दर भावनाएँ
वर्ष-भर
छलती रहीं,
सौभाग्य को
दलती कुचलती रहीं !

सुख को
तरसता ही रहा,
सम्पन्नता पाने
कलपता ही रहा,
यश के लिए
उत्सुक तड़पता ही रहा,
रस की
छलकती मधुर
कनक-कटोरियों को
मन ललकता ही रहा !

नव-वर्ष का
जैसा
किया था आगमन-उत्सव,
नहीं
वैसी बिदाई !
क्या कहें कुछ और
प्रिय भाई !

(34) विसंगति

हम
आधुनिक नहीं,
किन्तु युग 'आधुनिक' है !
(कथन अलौकिक है !)

यद्यपि
तन अत्याधुनिक लिबास धारे,
किन्तु
मन जकड़े हैं हमारे
रूढ़ियों
अंध-विश्वासों से,
गतानुगत परम्पराओं
असंगत अर्थहीन प्रथाओं
आदिम संस्कारों से,
हस्त-रेखाओं
सितारों से !

मानसिकता हमारी
प्रागैतिहासिक है,
किन्तु युग 'आधुनिक' है !

आधुनिकता : मात्र मुखौटा है
हमारे
दक़ियानूसी चेहरों पर,
आधुनिकता :
जगर-मगर करता
खोटा गोटा है
कोठियों पर
घरों पर।

हमारा पुराणपंथी चिन्तन
हमारा भाग्यवादी दर्शन
धकेलता है हमें
पीछे... पीछे... पीछे
अतीत में
सुदूर अतीत में
असामयिक मृत व्यतीत में।

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ हैं
हमारे पास;
किन्तु
वैज्ञानिक दृष्टि नहीं,
दृष्टिकोण नहीं

(स्थिति यह
कोई उपेक्षणीय
गौण नहीं।
अद्‌भुत है,
अश्रुत है।)

लकीर के फ़कीर हम
आँख मूँद कर चलते हैं,
अपने को आधुनिक कह
अपने को ही छलते हैं !

कहाँ है
नये ज़माने का
नया इंसान ?
मूर्ख महन्तों को
पुजते देख
अक़्ल है हैरान !

(35) प्रजातंत्र

जिसका
उपद्रव-मूल्य है
वह पूज्य है !
जिसका
जितना अधिक उपद्रव-मूल्य है
वह उतना ही अधिक पूज्य है !
अनुकरणीय है !
अधिकांग है,
और सब विकलांग हैं !

वंदनीय है !
जो मदान्ध है
जो कामान्ध है
क्रूर कामान्ध है
आदरणीय है,
उच्च आसन पर
सुशोभित
श्रेष्ठ समादरणीय है !

जो जितना मुखर
और लट्ठ है
जो जितना कड़ुआ मुखर
और जितना निपट लट्ठ है
उसके
पीछे-आगे
दाएँ-बाएँ
ठट्ठ हैं !
उतने ही
भारी भड़कीले ठट्ठ हैं !

उसका गौरव
अनिर्वचनीय है,
उसके बारे में
और
क्या कथनीय है !

●

(36) लालसा

हम खाते नहीं,
केवल पेट भरते हैं,
चरते हैं।
(नियति है यह,
हमारी।)
खाते
तुम हो।

सृष्टि के
सर्वोत्तम पदार्थ
(हमारे लिए गतार्थ !)

विधाता के
सकल वरदान
संचित कर लिए
तुमने अपने लिए,
वंचित कर हमें।
(प्रकृति है यह,
तुम्हारी।)

न होगा बाँस
न बजेगी बाँसुरी
न होगा दाम
न परसेगी

माँ, सुस्वादु री !
मात्र देखेंगे
या
कथाओं में सुनेंगे,
मूक मजबूर

(बादाम-काजू-पिश्ते,
अंगूर,
खीर-मोहन, रस-गुल्ले-रबड़ी।
हम से दूर !)

●

(37) भोर

सृष्टि का कम्बल
हटाता
आ रहा है भोर !

करता अनावृत
सुप्त नग्न पहाड़ियों को,

सकपकाता
युगनद्ध
झबरीली
झपकती झाड़ियों को।
वे अरे, जाएँ कहाँ
किस ओर !

नटखट भोर की
इस बाल-क्रीड़ा पर
कर रहे
पशु और पक्षी शोर !

●

(38) अ-तटस्थ

पत्तों के घूँघट में
अपने को
भरसक ढाके
गोरी गोभी !
    बेरहमी से
    काट गया रे
    कल्लू लोभी !

जो पालक
वह भक्षक
कितना छल ?
    कहता
    सब्ज़ीमंडी में
    बेचूंगा कल !
    चल चल
    मेरी हँसिया चल !

●

(39) एब्सर्ड कविता

(1)
बिल्ली रस्ता काट गयी
हँडिया कुतिया चाट गयी
औरत घर से घाट गयी
कविता, हाय ! सपाट गयी !

(2)
बिल्ली रोयी ज़ार-ज़ार
कुतिया कूदी बार-बार
औरत भटकी द्वार-द्वार
सारी-सारी तार-तार
कविता लिक्खी धार-दार !

(3)
बिल्ली-चुहिया ठाना वैर
कुतिया आयी जल में तैर
औरत निकली करने सैर
अपनी आज मनाओ ख़ैर
कविता ऐसीसिर ना पैर !

●

(40) श्रद्धांजलि

बेघरबार रहकर भी दिया आश्रय, फ़क़ीरों की तरह
फ़ाक़ामस्त रहकर भी जिये आला अमीरों की तरह
अंकित हो गये तुम मानवी इतिहास में कुछ इस क़दर
आएगा तुम्हारा नाम होंठों पर नज़ीरों की तरह !

चमके तम भरे विस्तृत फ़लक पर चाँद-तारों की तरह
रेगिस्तान में उमड़े अचानक तेज़ धारों की तरह,
पतझर-शोर, गर्द-गुबार, ठंडी और बहकी आँधियाँ
महके थे तुम्हीं, वीरान दुनिया में, बहारों की तरह !

● (महाप्राण निराला की स्मृति में।)

(41) सर्वहारा का वक्तव्य

लोग
हमारी भाषा में
बोल रहे हैं,
    यह सच है।

सारे वे ख़ौफ़नाक शब्द
आज गूँज रहे हैं
संसद में
नेताओं के वक्तव्यों में
    यह सच है !

अरे, हमारे नारे
लगा रहे तुम भी ?
अचरज
    पर, सच है।

हलचल / तत्परता
आज अचानक
लोग
हमारे अर्गल
खोल रहे हैं,
    यह सच है।

आला-आला अफ़सर
आज
अँधेरी झोपड़ियों में
जा-जा
दुख दर्द हमारे
पहली बार
टटोल रहे हैं,
    यह सच है।

लगता है
'क्रांति' उभर आयी है !
गाँवों में
नगरों में
'जनवादी' फ़ौज़
उतर आयी है !
कैसा अद्भुत
जन-आन्दोलन है !
सत्ता-लोलुप नेताओं में
    रातों-रात
    हुआ परिवर्तन है !

अथवा
यह स्व-रक्षा हित
केवल आडम्बर है,
छल-छद्म भरा
मिथ्या संवेदन-स्वर है।

(42) अभूतपूर्व

ऐसा
कभी हुआ नहीं
पंगु हो गये हों शब्द,
पैरों वाले शब्द
चलने-दौड़ने वाले शब्द,
एक नहीं
अनेक-अनेक शब्द !

ऐसा
कभी हुआ नहीं
निरर्थक हो गये हों
शब्द,
विविध भंगिमाओं वाले
विविध अर्थ-गर्भी शब्द,
ऐसे खोखले हो गये हों,
बेअसर
मात्र चिन्ह-धर !

शब्द
बैसाखी लगाकर नहीं चलते,
उनके पदों में
पंख होते हैं,
सुदूर असीम आकाश में

सौ-सौ गज़ उछलते हैं !
गहनतम खाइयों को
लाँघ जाते हैं,
बार-बार
अनमोल माणिक
बाँध लाते हैं !

ऐसे शब्द
ऐसे तीव्रगामी शब्द
ऐसे तिमिर-भेदी शब्द
कभी हुआ नहीं
लँगड़ा गये हों,
चकरा गये हों
ठंडा गये हों !

समूची ज़िन्दगी की
घनीभूत पीड़ा भरे
शब्द,
इस क़दर
छूँछे हो गये हों !
बे-तरह
हवा में खो गये हों !

●

(43) आश्वास

घने कुहरे ने
ढक लिया आकाश,
घने कुहरे ने
भर लिया आकाश !

रास्ते सब बन्द हैं,
जीवन निस्पन्द है !

कितना
सिकुड़ गया है क्षितिज
चारों ओर का विस्तृत क्षितिज !
धुँधले पर्यावरण में
क़ैद हैं हम,
कितना विषम है
समय की सातत्यता का क्रम !

ध्वनि-तरंगें रुद्ध हैं,
समूची चेतना
भयावह वातावरण में बद्ध है,
सब तरफ़
मात्र एक
स्थिर अलस मूकता का राज है,
स्तम्भित
सहमा हुआ
समस्त समाज है।

सुनो
मैं आता हूँ,
सूरज की तरह आता हूँ !
दृष्टि का आलोक
मेरे पास है,
आत्म-शक्ति का
अक्षय विश्वास है !

अँधेरे के
कुहरे के
पर्वतों को ढहा दूंगा !
मार्ग-रोधक
सब बहा दूंगा !

आकाश
फिर गूँजेगा,
नाना ध्वनियों से गूँजेगा !
प्रकाश
फिर फैलेगा,
उमड़ता
लहरता
धारा-प्रवाह
प्रकाश फैलेगा।

(44) मुक्त-कण्ठ

कौन है
जो तुम्हें सच
बोलने नहीं देता ?
कौन है
जो तुम्हें
ज़िन्दगी की असलियत
खोलने नहीं देता ?
कौन है हावी
तुम्हारी चेतना पर ?
किसने
बाँध दी हैं शृंखलाएँ
अन्तःप्रेरणा पर ?

किसने
दबोच रखा है, भला
तुम्हारा गला ?

चेहरे पर अंकित
रेखाएँ घुटन की,
डबडबायी आँखें

चीखती
निरीहता मन की !

कब तलक
रहेगा सूखा हलक़ ?

आवाज़
भर्रायी हुई आवाज़
बोलती है,
कितना स्पष्ट
सब बोलती है !

नहीं,
यह बंध शिथिल हो,
हर धड़कन पर शिथिल हो !
कंठ मुक्त हो,
उन्मुक्त हो !
बोलो
जकड़न टूटेगी !
शब्द-शब्द से
रोशनी फूटेगी !

(45) संधान

इस बीच :
जीये किस तरह
हम ही जानते हैं !
कितना भयावह था
लहरता-उफ़नता-टूटता
सैलाब
हम ही जानते हैं !

अर्थ :
जीवन का : जगत् का
गूढ़ था जो आज तक
अब हम
उसे अच्छी तरह से
हाँ,
बहुत अच्छी तरह से
जानते हैं !

असंख्य परतों को लपेटे
आदमी
अब पारदर्शी है,
भीतर और बाहर से
उसे हम
सही,
बिलकुल सही
पहचानते हैं !

आओ, तुम्हें
हाँफ़ते,
दम तोड़ते
तूफ़ान की गाथा सुनाएँ !
जलती ज़िन्दगी से जूझते
इंसान की गाथा सुनाएँ !

●

14

जीने के लिए

रचना-काल सन् 1977-1986
प्रकाशन सन् 1990

कविताएँ

1 जीने के लिए

2 आग्रह

3 शुभैषी

4 कामना

5 कविता-प्रार्थना

6 धर्म

7 गौरैया

8 पहचान

9 आतंक के घेरे में

10 धर्मयज्ञ

11 आरज़ू

12 सन् 1986 ई. में

13 अग्नि-परीक्षा

14 नये इंसानों से

15 दूसरा मन्वन्तर

16 इतिहास-सृष्टाओ !

17 दरिद्र-नारायण

18 माहौल

19 विजय-विश्वास

20 मंत्र

21 चरम-बिन्दु

22 महत्त्वपूर्ण

23 अनुवाद : एक सेतु

24 भवन

25 मुक्ति-बोध (1)

26 मुक्ति-बोध (2)

27 उमंग

28 सम्मोहन

29 अननुभूत : अस्पर्शित

30 अतृप्ति-भेंट

31 इतवार का एक दिन

32 वास्तविकता

33 लाचारी

34 विरुद्ध

35 कृतकार्य

36 विश्लेषण

37 उपलब्धि

38 एक साध : अधूरी

39 कृतज्ञता

40 अपूर्ण

(1) जीने के लिए

दहशत दिशाओं में
हवाएँ गर्म
गंधक से, गरल से;

किन्तु मंज़िल तक
थपेड़े झेलकर
अविराम चलना है !

शिखाएँ अग्नि की
सैलाब-सी
रह-रह उमड़ती हैं ;

किन्तु मंज़िल तक
चटख कर टूटते शोलों-भरे
वीरान रास्तों से
गुज़रना है,
तपन सहना
झुलसना और जलना है !

सुरंगें हैं बिछी
बारूद की
चारों तरफ़
नदियों पहाड़ों जंगलों में ;

किन्तु मंज़िल तक
अकेले
खाइयों को ; खंदकों को
लौह के पैरों तले
हर बार दलना है !

(2) आग्रह

आदमी को
मत करो मजबूर !
इतना कि
बेइंसाफ़ियों को झेलते
   वह जानवर बन जाय !
या
बेइंतिहा
दर्द की अनुभूतियों को भोगते
   वह खण्डहर बन जाय !

आदमी को
मत करो मज़बूर
इतना कि उसको
ज़िन्दगी
लगने लगे
   चुभता हुआ
   रिसता हुआ
   नासूर !
आदमी को
मत करो
यों
इस क़दर मजबूर !

(3) शुभैषी

बद्दुआओं का
असर होता अगर ;
वीरान
यह आलम
कभी का

हो गया होता !

जाग उठता
हर क़दम पर
आदमी का दर्प-दुर्वासा !
चिरन्तन
प्रेम का सोता
रसातल में
कभी का
खो गया होता !

कहाँ हो तुम
पुनीत शकुन्तले !
अभिशाप की
जीवन्त पंकिल प्रतिक्रिया !
कहाँ हो तुम ?

(4) कामना

कभी तो ऐसा हो
कि हम
अपने को ऊँचा महसूस करें,
भले ही
चंद लमहों के लिए।

कभी तो ऐसा हो
कि जी सकें हम
ज़िन्दगी सहज
कृत्रिम मुसकान का
   मुखौटा उतार कर,
बेहद तरस गया है
आदमी

सच्चे क़हक़हों के लिए !

कभी तो हम
रू-ब-रू हों
आत्मा के विस्तार से,
कितना तंग-दिल है
आदमी
अपरिचित
परोपकार से !

अंधकार भरे मन में
कभी तो
विद्युत कौंधे !
बड़ा महँगा
हो गया है
रोशनी का मोल ;
अदा कर रहा
हर आदमी
एकमात्र कृपण महाजन का
मसख़रा रोल !

कभी तो हम
तिलांजलि दें
अपने बौनेपन को
अपने ओछेपन को,
और अनुभव करें
शिखर पर पहुँचने का उल्लास !
कभी तो हो हमें
भले ही
चंद लमहों के लिए,
ऊँचे होने का अहसास !

(5) कविता-प्रार्थना

आदमी को
आदमी से जोड़ने वाली,
क्रूर हिंसक भावनाओं की
उमड़ती आँधियों को
मोड़ने वाली,
उनके प्रखर
अंधे वेग को आवेग को
बढ़
तोड़ने वाली
सबल कविता
ऋचा है, / इबादत है !
उसके स्वर
मुक्त गूँजें आसमानों में,
उसके अर्थ ध्वनित हों
सहज निश्छल
मधुर रागों भरे
अन्तर-उफ़ानों में !

आदमी को
आदमी से प्यार हो,
सारा विश्व ही
उसका निजी परिवार हो !

हमारी यह
बहुमूल्य वैचारिक विरासत है !
महत्
इस मानसिकता से
रची कविता
ऋचा है, इबादत है !

(6) धर्म

प्यार करना
ज़िन्दगी से : जगत से
आदमी का धर्म है !

प्यार करना
मानवों से
मूक पशुओं पक्षियों जल-जन्तुओं से
वन-लताओं से
द्रुमों से
आदमी का धर्म है !

प्यार करना
कलियों और फूलों से
विविध रंगों-सजी-सँवरी
तितलियों से
आदमी का धर्म है !

प्यार करना
इन्द्रजालों से रचे
अद्‌भुत
विशृंखल-सूत्र
सपनों से,
मधुरतम कल्पनाओं में
गमन करती
सुकोमल-प्राण परियों से
आदमी का धर्म है !

(7) गौरैया

गौरैया
बड़ी ढीठ है,
सब अपनी मर्ज़ी का करती है,
सुनती नहीं ज़रा भी
मेरी,
बार-बार कमरे में आ
चहकती है ; फुदकती है,
इधर से भगाऊँ
तो इधर जा बैठती है,
बाहर निकलने का
नाम ही नहीं लेती !
जब चाहती है
आकाश में
फुर्र से उड़ जाती है,
जब चाहती है
कमरे में
फुर्र से घुस आती है !
खिड़कियाँ-दरवाज़े बंद कर दूँ ?
रोशनदानों पर गत्ते ठोंक दूँ ?
पर, खिड़कियाँ-दरवाज़े भी
कब-तक बंद रखूँ ?
इन रोशनदानों से
कब-तक हवा न आने दूँ ?
गौरैया नहीं मानती।

वह इस बार फिर
मेरे कमरे में
घोंसला बनाएगी,
नन्हें-नन्हें खिलौनों को
जन्म देगी,

उन्हें जिलाएगी.... खिलाएगी !

मैंने बहुत कहा गौरैया से
मैं आदमी हूँ
मुझसे डरो
और मेरे कमरे से भाग जाओ !

पर, अद्‌भुत है उसका विश्वास
वह मुझसे नहीं डरती,
एक-एक तिनका लाकर
ढेर लगा दिया है
रोशनदान के एक कोने में !

ढेर नहीं,
एक-एक तिनके से
उसने रचना की है प्रसूति-गृह की।
सचमुच, गौरैया !
कितनी कुशल वास्तुकार हो तुम,
अनुभवी अभियन्ता हो !
यह घोंसला
तुम्हारी महान कला-कृति है,
पंजों और चोंच के
सहयोग से विनिर्मित,
तुम्हारी साधना का प्रतिफल है !
कितना धैर्य है गौरैया, तुममें !

इस घोंसले में
लगता है
ज़िन्दगी की
तमाम ख़ुशियाँ और बहारें
सिमट आने को आतुर हैं !

लेकिन ; यह
सजावट-सफ़ाई पसन्द आदमी
सभ्य और सुसंस्कृत आदमी
कैसे सहन करेगा, गौरैया
तुम्हारा दिन-दिन उठता-बढ़ता नीड़ ?
वह एक दिन
फेंक देगा इसे कूड़ेदान में !

गौरैया ! यह आदमी है
कला का बड़ा प्रेमी है, पारखी है !
इसके कमरे की दीवारों पर
तुम्हारे चित्र टँगे हैं !
चित्र
जिनमें तुम हो,
तुम्हारा नीड़ है,
तुम्हारे खिलौने हैं !

गौरैया ! भाग जाओ,
इस कमरे से भाग जाओ !
अन्यथा ; यह आदमी
उजाड़ देगा तुम्हारी कोख !
एक पल में ख़त्म कर देगा
तुम्हारे सपनों का संसार !

और तुम
यह सब देखकर
रो भी नहीं पाओगी।
सिर्फ़ चहकोगी,
बाहर-भीतर भागोगी,
बेतहाशा
बावली-सी / भूखी-प्यासी !

(8) पहचान

इन अट्टालिकाओं का
गगन-चुम्बी
कला-कृत
इन्द्र-धनुषी
स्वप्न-सा
अस्तित्व
कितना घिनौना है
    हमें मालूम है !

इनकी ऊँचाइयों का रूप
कितना
क्षुद्र, खंडित और बौना है
    हमें मालूम हैं !

परियों-सी सजी-सँवरी
इन अंगनाओं का
अवास्तव छद्म आकर्षण
कितना सुशोभन है
    हमें मालूम है !

गौर-वर्णी
कमल-पंखुरियाँ छुअन
कितनी
सुखद, कोमल व मोहन है
    हमें मालूम है !

परिचित हम
सुगन्धित रस-भरे
इन स्निग्ध फूलों की
चुभन से,

कामना-दव से
दहकती
देह की आदिम जलन से,
वासना-मद से
महकती
देह की आदिम तपन से,
इनका बिछौना
कितना सलोना है
    हमें मालूम है !

●

(9) आतंक के घेरे में

एक बहुत बड़ी और गहरी
साज़िश की गिरफ़्त में है देश !

चालाक और धूर्त गिरोहों के
चंगुल में फँसा
छद्म धर्म और बर्बर जातीयता के
दलदल में धँसा,
    एक बहुत बड़ी और घातक
    जहालत में है देश !

आत्मीय रिश्तों का पक्षधर
दोस्ती के
सपनों व अरमानों का घर,
    एक बहुत बड़ी और भयावह
    दहशत में है देश !

संलग्न
सभ्य और नये इंसानों की अवतारणा में,
संलग्न
शांति और अहिंसा की

कठिनतम साधना में,
एक बहुत बड़ी और भारी
मुसीबत में है देश !

●

(10) धर्मयज्ञ

आधुनिक विश्व में
'धर्म' के नाम पर
कैसा जुनून है ?
सभ्य प्रदेशों में
ज़िन्दा
बर्बर 'कानून' है,
सर्वत्र -
ख़ून-ही-ख़ून है !

नये इंसानो !
बेहतर की कामना करो,
धर्म के ठेकेदारों का
सामना करो !
विकृत धर्मों की
खुलकर अवमानना हो
(चाहे
व्यापक विनाश सम्भावना हो।)

मनुष्य मनुष्य है,
पशु नहीं !
उसे प्रबोध दो,
वह समझेगा, सँभलेगा, बदलेगा !

●

(11) आरज़ू

कितना अच्छा होगा
जब दुनिया में सिर्फ़ रहेंगे
ईश्वर से अनभिज्ञ,
प्राणी-प्राणी प्रेम-प्रतिज्ञ !

फिर
ना मंदिर होंगे, ना मसजिद
ना गुरुद्वारे, ना गिरजाघर !

कितनी होगी हैरत !
मारेगा कौन किसे ?
फिर कौन करेगा नफ़रत ?
सिर्फ़ मुहब्बत होगी,
होगी ग़ैरत !
सब 'तनखैया' होंगे,
भैया-भैया होंगे !

●

(12) सन् 1986 ई. में

इसने
उसको
भून दिया
गोली से;

क्योंकि
भिन्न था
वह
बोली से !

●

(13) अग्नि-परीक्षा

काली भयानक रात,
चारों ओर
झंझावात,
पर, जलता रहेगा
दीप...
मणिदीप
    सद्भाव का,
    सहभाव का !
उगती जवानी
देश की
होगी नहीं गुमराह !
उजले देश की
जाग्रत जवानी
लक्ष्य युग का भूल
होगी नहीं गुमराह
तनिक तबाह !

मिटाना है उसे
जो कर रहा हिंसा,
मिटाना है उसे
जो धर्म के उन्माद में
फैला रहा नफ़रत,
लगाकर घात
गोली दाग़ता है
राहगीरों पर
बेक़सूरों पर !
मिटाना है उसे
जिसने बनायी ;
धधकती बारूद-घर
दरगाह !

    इन गंदे इरादों से
    नये युग की जवानी
    तनिक भी
    होगी नहीं गुमराह !

चाहे रात काली और हो,
चाहे और भीषण हों
चक्रवात-प्रहार,
पर,
सद्भाव का : सहभाव का
ध्रुव-दीप / मणि-दीप
निष्कम्प जलता रहेगा !
    साधु जीवन की
    सतत साधक जवानी
    आधुनिक,
    होगी नहीं गुमराह !

भले ही
वज्रवाही बदलियाँ छाएँ,
भले ही
वेगवाही आँधियाँ आएँ,
सद्भावना का दीप
सम्यक् धारणा का दीप
संशय-रहित हो
अविराम / यथावत्
    जलता रहेगा !
    एक पल को भी
    न टूटेगा
    प्रकाश-प्रवाह !
विचलित हो,
नहीं होगी
जवानी देश की

गुमराह !

उभरीं विनाशक शक्तियाँ
जब-जब,
मनुजता ने
दबा कुचला उन्हें
तब-तब !

अमर
विजय विश्वास !
इतिहास
चश्मदीद गवाह !
जलती जवानी देश की
होगी नहीं गुमराह !

एकता को
तोड़ने की साज़िशें
नाकाम होंगी,
हम रहेंगे
एक राष्ट्र अखंड
शक्ति प्रचंड !

सहन
हरगिज़ नहीं होगा
देश के प्रति
छल-कपट विश्वासघात
गुनाह !
मेरे देश की
विज्ञान-आलोकित जवानी
अंध-कूपों में
कभी होगी नहीं गुमराह !

(14) नये इंसानों से

पहले
सोचते हैं हम
अपने घर-परिवार के लिए।

फिर
अपने धर्म
अपनी जाति
अपने प्रांत
अपनी भाषा, और
अपनी लिपि के लिए !

आस्थाएँ : संकुचित।
निष्ठाएँ : सीमित परिधि में क़ैद।

हम अपने इस सोच की
रक्षा के लिए
मानव-रक्त की
नदियाँ बहा देते हैं,
पड़ोसियों को
गोलियों से भून देते हैं,
वहशी बन जाते हैं
आदमख़ोर हिंस्र
जानवर से भी अधिक,
भयानक शक्ल
धारण कर लेते हैं !
हमारे 'महान' और 'शहीद' बनने का
एक मात्र रास्ता यही है !

पीढ़ी-दर-पीढ़ी
यह सोच

हमारी चेतना का
अंग बन चुका है,
हम इससे मुक्त नहीं हो पाते !

बार-बार हमारा ईश्वर
हमें उकसाता है
हम दूसरों के ईश्वरों की
हत्या कर दें
उनके अस्तित्व चिन्ह तोड़ दें
और स्वर्ग का स्थान
केवल अपने लिए
सुरक्षित समझें।

साक्षी है इतिहास
कि देश हमें नहीं दिखता,
विश्व-मानवता का लिबास
हमें नहीं फबता।

इस पृथ्वी पर मात्र
हम रहेंगे
हमारे धर्म वाले
हमारी जाति वाले
हमारे प्रांत वाले
हमारी ज़बान वाले
हमारी लिपि वाले,
    यही हमारा देश है,
    यही हमारा विश्व है !

कौन तोड़ेगा
इस पहचान को ?
ख़ाक करेगा
इस गलीज़ जहान को ?

नये इंसानो !
आओ, क़रीब आओ
और मानवता की ख़ातिर
धर्म-विहीन, जाति-विहीन
समाज का निर्माण करो
देशों की
भौगोलिक रेखाएँ मिटा कर !
विभिन्न भाषाओं
विभिन्न लिपियों को
मानव-विवेक की
उपलब्धि समझो !
नये इंसानो !
अब चुप मत रहो
तटस्थ मत रहो !

●

(15) दूसरा मन्वन्तर

भविष्य वह
आएगा कब
जब
मनुष्य कहलाएगा
मात्र 'मनुष्य' !
उसकी पहचान
जुड़ी रहेगी कब-तलक
देश से
धर्म से
जाति-उपजाति से
भाषा-विभाषा से
रंग से
नस्ल से ?

मनुष्य के मौलिक स्वरूप को

किया जाएगा रेखांकित कब ?
मनुष्य को
‘मनुष्य’ मात्र
किया जाएगा लक्षित कब ?

उसका लोक एक है
उसकी रचना एक है
उसकी वृत्तियाँ एक हैं
उसकी आवश्यकताएँ एक हैं,
उसका जन्म एक है
उसका अन्त एक है

मनुष्य का विभाजन
कब-तलक
किया जाता रहेगा ?
वह आख़िर कब-तलक
बर्बर मन की
चुभन-शताब्दियाँ सहेगा ?

तोड़ें
देशों की कृत्रिम सीमा-रेखाओं को,
तोड़ें
धर्मों की
असम्बद्ध - अप्रासंगिक,
दक़ियानूस
आस्थाओं को,
तोड़ें
जातियों-उपजातियों की
विभाजक व्यवस्थाओं को।

अर्जित हैं
भाषाओं-विभाषाओं की भिन्नताएँ,

प्रकृति नियंत्रित हैं
रंगों-नस्लों की
बहुविध प्रतिमाएँ !

ये सब
मानव को मानव से
जोड़ने में
बाधक न हों,
ये सब
मानव को मानव से
तोड़ने में
साधक न हों !

अवतरित हो
नया देवदूत, नया पैग़म्बर, नया मसीहा
इक्कीसवीं सदी का
महान मानव-धर्म
प्रतिष्ठित हो,
अन्य लोकों में पहुँचने के पूर्व
मानव की पहचान
सुनिश्चित हो !

(16) इतिहास-स्रष्टाओ!

इंसान की तक़दीर को
बदले बिना
इंसान जो
अभिशप्त है : संत्रस्त है
जीवन-अभावों से !
इंसान जो
विक्षत प्रताड़ित क्षुब्ध पीड़ित
यातनाओं से, तनावों से !

उस दुखी इंसान की
तक़दीर को बदले बिना ;
संसार की तसवीर को
बदले बिना
संसार जो
हिंसा, विगर्हित नग्न पशुता ग्रस्त,
रक्त-रंजित,
क्रूरता से युक्त
घातक अस्त्र-बल-मद-मस्त !
उस बदनुमा संसार की
तसवीर को बदले बिना ;
इतिहास-स्रष्टाओ !
सुखद आरामगाहों में
तनिक सोना नहीं, सोना नहीं !
संघर्ष-धारा से विमुख
होना नहीं, होना नहीं !

हर भेद की प्राचीर को
तोड़े बिना,
पैरों पड़ी ज़ंजीर को
तोड़े बिना,
इतिहास-स्रष्टाओ !
सतत श्रम-साध्य
निर्णायक विजय-अवसर
अरे, खोना नहीं, खोना नहीं ।

इंसान की तक़दीर को
बदले बिना,
संसार की तसवीर को
बदले बिना,
सोना नहीं, सोना नहीं !
●

(17) दरिद्र-नारायण

दो जून
रोटी तक जुटाने में
नहीं जो कामयाब,
ज़िन्दगी
उनके लिए -
क्या ख़ाक होगी ख़्वाब !
कोई ख़ूबसूरत ख़्वाब !
उनके लिए तो
ज़िन्दगी
बस,
कश-म-कश का नाम,
दिन-रात
पिसते और खटते
हो रही उनकी
निरन्तर
उम्र तमाम !

वंचित
उच्चतर अनुभूतियों से जो
भला उनके लिए
संस्कृति-कला का
अर्थ क्या ?
उपयोग क्या ?

सब व्यर्थ !
(जो न समर्थ।)
यद्यपि; सतत श्रम-रत;
किन्तु जीवन-भर
निराश-हताश !
जिनके पास

थोड़ा चैन करने को
नहीं अवकाश !

उनके लिए है
नृत्य-नाटक-काव्य के
सारे प्रदर्शन,
दूरदर्शन
व्यंग्य मात्र !
वे - केवल हमारे
खोखले ओछे अहं के
तुष्टि-पूरक-पात्र !
पहले चाहिए उन्हें
शोषण-मुक्ति,
महिमा-युक्त गरिमा,
मान की सम्मान की रोटी,
सुरक्षा और शिक्षा !
चाहिए ना एक कण भी
राज्य की या व्यक्ति की
करुणा, दया, भिक्षा !

●

(18) माहौल

देश के असली खेवनहार
नेता अफ़सर ठेकेदार !
सारी दौलत के हक़दार,
राष्ट्र-भक्त झण्डाबरदार !
इनकी तिकड़म का संसार
करदे शासन को लाचार,
हमको तुमको बे-घरबार
ये मशहूर बड़े बटमार !
दुष्टाचारी हैं मक्कार,
है धिक्कार इन्हें धिक्कार !

.....
गूँजी किसकी यह ललकार
जागी जनता, भागो यार !

●

(19) विजय-विश्वास

लड़ाई हमारी
अधूरी रहेगी नहीं,
बीच में ही
रुकेगी नहीं
जो
मेहनतकश सबल साहसिक शूर है
नाम : 'मज़दूर' है

उसकी लड़ाई
अन्तिम विजय तक
थमेगी नहीं !
    और होगी कड़ी
    और होगी बड़ी,
संसार में
फैलती जायगी यह
लगातार !
बर्बर दमन से
कभी ख़त्म होगी नहीं,
कमज़ोर धीमी
पड़ेगी नहीं !

आश्वस्त हम
यह युद्ध
शोषण-विरुद्ध,
अवरुद्ध होगा नहीं !

हर रुकावट
मिटाकर,
लड़ाई हमारी
सतत
भय-मुक्त
जारी रहेगी !
रुकेगी नहीं !

(20) मंत्र

स्थापित हो
समता
मानव-मानव में समता
युग-युग वांछित-इच्छित समता !
प्रजाति-जाति-वर्ण-धर्म मुक्त
हो मनुष्य-लोक,
हो नहीं
मनुष्य के मिलाप में
भेद-भाव, रोक-टोक !
पहचान मनुज की /
नहीं प्रदेश ... देश, / भाषा-भेष।
पहचान मनुज की मात्र एक
मानव तन, मानव मन।
अनुभव-चिन्तन से
उपजे विवेक
पहचान मनुज की मात्र एक।
अवतरित हो
ममता
मानव-मानव में ममता
मादक मादन मायल ममता।
ध्वस्त करो
अन्धी पौराणिकता

मानव-मानव के प्रति पाशविकता।

मानव ! मत भटको अब,
कल्पित भाग्य-विधानों पर
मानव ! मत अटको अब।

मूरखता, मूरखता, मूरखता।
केवल वंचकता, वंचकता।
इससे मुक्त करो
जीवन और मनुज को,
धृष्ट-दुष्ट
धर्मध्वजियों धूर्तों से
रक्षित हो मानवता।
हो सदा-सदा को दूर
विषमता,
जागे दलितों में
अपराजित अद्भुत क्षमता।
स्थापित हो
इंसानी दुनिया में
ख़ुशहाली
माली समता,
सामूहिक सामाजिक
गौरवशाली समता।

(21) चरम-बिन्दु

एक लमहा
फ़र्क़ है
होने,
न होने में !
बहुत सूक्ष्म सीमा है
अस्तित्व

और
अनस्तित्व के मध्य,
फ़र्क है
सिर्फ़ रेखा भर
हँसने
और रोने में !

बहुत सूक्ष्म अन्तर है
अभिव्यक्ति में
अन्तःकरण की !
सम्भव नहीं है
खींचना सरहद
जनम की, मरण की !

स्थितियाँ
समतुल्य हैं लगभग !
युग-युग सँजोयी साध
कब किस क्षण अचानक
मूर्त हो जाए ;
अमूर्त हो जाए ;
एक पल झपकी
बहुत है
पाने और खोने में !
एक लमहा
फ़र्क है -
होने;
न होने में !

●

(22) महत्त्वपूर्ण

चीज़ें
कोई रूप-स्वरूप तो लें,
आख़िर कोई तो रूप लें !
हम पहुँचे तो सही
(ग़लत या सही)
किसी नतीज़े पर,
किसी घर.....दर
किसी ठिकाने भर !

यों वियाबान में
कब-तक भटकेंगे ?
यों आग की भट्ठी में
कब-तक
तरल-तरल तड़पेंगे ?
चीज़ें
कोई शक्ल तो लें !
आख़िर कोई तो शक्ल लें !

मंसूबों की रेखाएँ
स्पष्ट या धुँधला
कोई आकार-चिन्ह लें तो
आख़िर, कोई आकार-चिन्ह तो लें !
कि हम जान सकें
दिशाएँ
दूरियाँ
विस्तार !

विचार
अमूर्त विचार साकार तो हों,
चिन्तन-लोक की गहराइयों में
किसी तरह तो हों साकार
अमूर्त विचार,

कि हम बना सकें दिमाग़
और पहना सकें
उन्हें
कोई भाषा-प्रारूप।
कहीं से
कोई तो रोशनी की किरन फूटे
अन्धकार तो छँटे
और हम अन्ध-कूप से

आएँ बाहर,
कम-से-कम बाहर तो आएँ,
चीज़ें
रंग-रूप तो लें
हवा-धूप तो लें !
चीज़ें
कोई रूप-स्वरूप तो लें !

●

(23) अनुवाद : एक सेतु

अनुवाद
मात्र भाषान्तर नहीं
वह सेतु है !

एक मन को दूसरे से
जोड़ने का,
परस्पर अजनबीपन
तोड़ने का !

विश्व-मानव के
शिथिल सम्बन्ध-सूत्रों को
पिरोने और कस कर बाँधने का,
आत्म-हित में

दृढ़ अटूट प्रगाढ़
मैत्री साधने का !

अनुवाद
साधन है
देशान्तरों के - व्यक्तियों के
बीच निर्मित
अतल गहराइयों में
पैठने का,
निःशंक हो
द्विविधा रहित
मिल बैठने का।

लाखों-करोड़ों मानवों के मध्य
सह-संवाद है
अनुवाद।
अनजान मानव-लोक के
बाहर व भीतर व्याप्त
गहरे अँधेरे का
दमकती रोशनी में
सफल रूपान्तर।
नहीं है
मात्र भाषान्तर !

माध्यम है
अपरिचय को
गहन आत्मीयता में बदलने का,
हर संकीर्णता से मुक्त हो
बाहर निकलने का !
सभ्यता-संस्कार है !
अनुवाद !

भाषिक चेतना का
शक्त एक प्रतीक है,
सम्प्रेषण विधा का
एक रूप सटीक है !
अनुवाद
मानव-विवेक
प्रतिष्ठ सार्थक
केतु है !
अनुवाद -
मात्र भाषान्तर नहीं;
वह सेतु है !

(24) भवन

कुएँ की दीवारों जैसा
ऊँचा परकोटा,
सँकरे-सँकरे गलियारों जैसा
हर कमरा छोटा,
जिसमें
ना उपवन
ना आँगन
आधुनिक वास्तु-कला का अंकन ?
या
संकुचित हृदय की
प्रतिकृति,
स्वकेन्द्रित मन का
दर्पण !

(25) मुक्ति-बोध (1)

लगता है
बहुत कुछ बदला हुआ !
नया-नया !
लगता है
बरसों का चढ़ा जुआ
सहसा उतर गया !
बरसों से
लम्बी सँकरी
कँकरीली-पथरीली
अनइच्छित सड़कों से
तन पर, मन पर
भारी बोझा ढोते
गुज़रता रहा,
नट की तरह
रोज़-रोज़
एक ही खम्भे पर
चढ़ता-उतरता रहा !

शुक्र है
अब मुक्त हूँ
हवा की तरह
कहीं भी जाऊँ,
उड़ूँ, नाचूँ, गाऊँ !

शुक्र है
उन्मुक्त हूँ,
लहर की तरह !
जब चाहूँ -
लहराऊँ बल खाऊँ,
चट्टानों पर लोटूँ
पहाड़ियों से कूदूँ
वनस्पतियों पर बिछलूँ,

दौड़ूँ
बेतहाशा दौड़ूँ
या
किसी सरोवर में पसर जाऊँ,
बूँद-बूँद बिखर जाऊँ !

मुक्त हूँ,
कुछ इस तरह
जैसे कि
पिंजरे का द्वार
अचानक खुल जाए
पंख फड़फड़ाता तोता
दूर आकाश में उड़ जाए,
हम-उम्रहमजोलियों में मिल जाए,
हम-ख़्वाबा के साथ खेले
उसे आगोश में ले ले
नोचे चूमे !
जो चाहे
जब चाहे
बोले
ऊँचे या धीमे
आतुर या हौले !

लगता है
बरसों के लिपटे नागफाँस
कट गए,
ज़हरीली बारिश के मेघ
हट गए !
अब
चंदन-वृक्षों पर
कस्तूरी फूल खिलेंगे
मधुर-स्रवा-सम

फूलों के गुच्छ लगेंगे !
जो कभी हुआ नहीं
लगता है
अब होगा !

क्योंकि -
बहुत-कुछ
दिखता है
नया-नया
बदला हुआ !

(26) मुक्ति-बोध (2)

अब
बेफ़िक्री से सोऊँगा,
बेफ़िक्री से टहलूँगा
'जनक-ताल' तक टहलूँगा,
अब नहीं होगी हड़बड़ी
तोड़ दी है हथकड़ी
हर कड़ी !

घंटों नहाऊँगा,
सुरे-बेसुरे
नाना गीत गा-गा कर
नहाऊँगा !

कहाँ हैं
मेरे
'पाकीज़ा' और गीतादत्त के रिकार्ड ?
रात के सन्नाटे में
बार-बार बजाऊँगा !
जब-तब गुनगुनाऊँगा !

ओ मेरे उपवन के पौधो !
तुम्हें अब कोई शिकायत नहीं होगी,
जी-भर देखूंगा
सींचूँगा
बाँहों में बाँधूँगा !
ओ कनेर, कचनार, अमरूद !
अब उदास मत रहो
ओ रजनीगंधा ! ओ बेला !
अब हताश मत रहो,
तुम्हारी गंध
रोम-रोम से अनुभूत होगी,
हर साँस जैसे
प्रसून-प्रसूत होगी !

अनजान में भी
अब नहीं रौंदूँगा
ओ मेरे उपवन की
सब्ज़ घास !
रहूंगा पास,
मख़मली तन पर लोटूंगा
आदिम कामना से भर,
सुकोमल हाथ फेरूंगा
ओ स्निग्ध रचना !
हो
प्रफुल्ल-वदना !
हर क्षण अपना है,
सच सपना है !

(27) उमंग

सान्ध्य काल
धूप-छाँह बीच,
गिर रही फुहार
रिमझिमा रहा
गगन !

बार-बार
द्वार थपथपा रहा
समय / अ-समय
किस क़दर
उतावला पवन !

दूर-पास
खेत हाट चौक में
अधीर
जान-बूझ
भीग-भीग
थरथरा रहा
प्रिया बदन !

(28) सम्मोहन

मधु-ऋतु
आगमन पर
बंधु,
इतराओ नहीं !
इतना भरोसा मत करो
मधु-ऋतु मोहिनी पर,
इस क़दर
धरती-गगन में झूम कर
उल्लास-रस गाओ नहीं !

अस्तित्व
इसकी सुरभि का
कुछ दिनों का,
भोग-अनुभव
कुछ क्षणों का !

मधु-ऋतु गंध पर
विश्वास कर
निर्भर नहीं इतना रहो
मन !
भावना की तीव्र धारों में
नहीं इतना बहो
मन !

यह अल्प-जीवी
बिखर कर
छितर जाएगी,
रख न पाओगे
तनिक भी
बाँध कर तुम !
यह मनोरम गंध
मधु-ऋतु की !
वस्तु
लहराती हुई,
आकाश की ऊँचाइयाँ
छूती हुई,
उन्मुक्त अल्हड़
मंद शीतल वायु की
जुड़वाँ सहेली !

मत करो इच्छा
समझने-जानने की

गूढ़ उलझी जटिल और अबूझ
पहेली !

चेतना हत
भूल कर
होना न सम्मोहित,
समर्पित;
स्पर्श पा
मधुमास का,
उसकी सुखद
मधु-श्वास का !

●

(29) अनुभूत : अस्पर्शित

ओ,
लहकती बहकती
बसन्ती हवाओ !
छुओ मत मुझे
इस तरह
मत छुओ !
अनुराग भर-भर
गुँजा फागुनी स्वर
न ठहरो
न गुज़रो
इधर से
बसन्ती हवाओ !

भटकती बहकती
बसन्ती हवाओ !
मुझे ना डुबाओ
उफ़नते उमड़ते
भरे पूर रस के

कुओं में, सरों में,
मधुर रास-रज के
कुओं में, सरों में,
छुओ मत मुझे
इस तरह
मत छुओ।
ओ, बसन्ती हवाओ !
दहकती चहकती
बसन्ती हवाओ !

अभिशप्त
यह क्षेत्र वर्जित
सदा से,
न आओ इधर
यह विवश !
एक
सुनसान वीरान मन को
समर्पित
सदा से,
न आओ इधर
ओ, बसन्ती हवाओ !
गमकती खनकती
बसन्ती हवाओ !
छुओ मत मुझे
इस तरह
मत छुओ !

तप्त प्यासे
कुओं में, सरों में
नहीं यों

भिगोओ मुझे !

अवश अंग
युग-युग पिपासित
कुओं में, सरों में
नहीं यों
भिगोओ मुझे !

ओ, बसन्ती हवाओ !
मचलती छलकती
बसन्ती हवाओ !
छुओ मत मुझे
इस तरह
मत छुओ !
यह
अननुभूत ओझल अस्पर्शित
सदा से !
न आओ इधर
यह
उपेक्षित अदेखा अचीन्हा
सदा से !

(30) अतृप्ति : भेंट

अब
क्या दे सकता हूँ तुम्हें
एक गढ़ी-बनी
स्थिर मूर्ति के सिवा !
बिखरी विभूति के सिवा !

जो हूँ
बन चुका हूँ
ढल चुका हूँ,
प्रदत्त कोश की अधिकांश साँसें

गिन चुका हूँ,
फल चुका हूँ !

अब नहीं मुमकिन -
प्रयोग बतौर
तोड़ूँ-तराशूँ और,
अधबना रह जाएगा,
शेष न कह पाएगा !

ज़िन्दगी के इस चरण पर
कमज़ोर कंधों पर उम्र के
उतरता-डूबता सूरज मैं
क्या दे सकता हूँ तुम्हें
ऊष्मा की
पहचानी मांसल अनुभूति के सिवा।

तुम हो
उफ़नते अतल सागर की तरह,
जलती धधकती वासनाएँ तुम्हारी
अनापे अम्बर की तरह,
तुम्हें क्या दे सकता हूँ भला
हे भाविनी,

कल्पना प्रभूति के सिवा,
उत्तेजना आपूर्ति के सिवा !

●

(31) इतवार का एक दिन

पूरा दिन
बीत गया इन्तज़ार में,
तमाम लोगों के इन्तज़ार में।

नहीं आया अप्रत्याशित भी,
नहीं टकराया अवांछित भी।

बीत गया
पूरा दिन,
लमहे-लमहे गिन।
इतवार इस बार का
नहीं लाया कोई समाचार
अच्छा या बुरा
रुचिकर या क्षुब्धकारक।

निरन्तर ऊहापोह में
गुज़र गया पूरा दिन।

इस या उस के
दर्शन की चाह में,
घूमते-टहलते
कमरों की राह में।

बस, सुबह-सुबह
आया अख़बार,
और दूध वाले ने
प्रातः-सायं बजायी घंटी
नियमानुसार।

अन्यथा कहीं कोई
पत्ता तक न खड़खड़ाया,
एक पक्षी तक

मेरे आकाश के इर्द-गिर्द
नहीं मँडराया।

बीत गया पूरा दिन
इन्तज़ार बन,
मूक लाचार बन।

⬣

(32) वास्तविकता

ज़िन्दगी ललक थी; किन्तु भारी जुआ बन गयी,
ज़िन्दगी फ़लक थी; किन्तु अंधा कुआँ बन गयी,
कल्पनाओं रची, भावनाओं भरी, रूप-श्री
ज़िन्दगी ग़ज़ल थी; बिफर कर बददुआ बन गयी !

⬣

(33) लाचारी

आरोपित अचाही ज़िन्दगी जी ली,
हरक्षण, हर क़दम शर्मिन्दगी जी ली,
हम से पूछते इतिहास अब क्या हो
दुनिया की जहालत गन्दगी जी ली !

⬣

(34) विरुद्ध

असलियत हम छिपाते रहे उम्र भर
झूठ को सच बताते रहे उम्र भर,
आप-बीती सुनायी, कहानी बता
दर्द में गुनगुनाते रहे उम्र भर !

⬣

(35) 'कृतकार्य'

जी, वाह ! क्या वाहवाही मिली,

ता-उम्र कोरी तबाही मिली,
दौलत बहुत, दर्द की, बच रही
सच, ज़िन्दगी भारवाही मिली !

⬣

(36) विश्लेषण

गँवाया ही गँवाया,
कुछ नहीं पाया,
ज़िन्दगी में कुछ नहीं पाया !
जो बच पाये
नुकीले शूल हैं,
जो उठा लाये
बेरंग बासी फूल हैं,
    पास में
    देखो धूल
    कितनी धूल है !

राह पर
हर मोड़ पर,
घर में
या कि बाहर,
हाट में, बाज़ार में
विश्वास के हाथों
सदा लुटते रहे !
अपनों से
परायों से
हमेशा
छल-कपट की
तेज़ धारों की कटारों के तले
बेहद सरलता से
अरे, कटते रहे !
लोगों की

तमाम रची-बुनी
चतुराइयों-चालाकियों से
उनकी हीनताओं-क्षुद्रताओं से
बहुत चाहा
बचना;
किन्तु
ओढ़ी सौम्यता शालीनता की
आरोपित मुखौटों की
कठिन
बेहद कठिन
पहचानना रचना !
उनके छद्म से बचना !

नहीं है शेष
कोई भी विरासत,
ढह गयी
जो
श्रम-पसीने से
बनायी थी इमारत !

●

(37) उपलब्धि

उछलती-कूदती
विपरीत
लहरों से
निरन्तर जूझते,
जीवन-मरण के बीच
अस्थिर झूलते,
दिन रात
कितनी कश-म-कश के बाद
कूल मिला !

धीरज से
कठिनतम साधना के बाद,
जीवन-सत्त्व-स्पन्दन भर
जड़ों को सींच
टटका
मुसकराता
एक
फूल खिला !

●

(38) एक साध : अधूरी

जी करता है
आज का दिन
ज़िन्दगी की कश-म-कश से
हटकर
बंद कमरे में
सोए-सोए गुज़ार दूँ !

न जाने
कितने बरसों से
निश्चिन्त बेख़बर हो
आदिम-राग का, अनुराग का
अहसास भर
सोया नहीं !

जी करता है
आज का दिन
निश्चेष्ट शिथिल चुप रह
चित्रमाला में अतीत की
खोए-खोए गुज़ार दूँ !
न जाने
कितने बरसों से

उजड़े गाँवों की राहों में
छूटे नगरों की बाँहों में
खोया नहीं !
जी करता है
आज का दिन
सारे वादे, काम, प्रतिज्ञाएँ
भूल कर
गंगा की लहरों-सी
तुम्हारी याद में
रोए-रोए गुज़ार दूँ !

न जाने
कितने बरसों से
तुम्हारी तसवीर से
रू-ब-रू हो
रोया नहीं !

⬣

(39) कृतज्ञता

छोड़ दो
यह ठोर
मन !
किसका इन्तज़ार यहाँ
अब और
मन !
ढल गया दिन
उतर आयी शाम,
घिर रहा
चारों दिशाओं में
अँधेरा
घनेरा !
करो स्वीकार

मन !
यह अकेलापन,
बड़े सुख से
करो स्वीकार
मन !

हे ख़ुदा !
शुक्रगुज़ार,

तेरा
बेहद
शुक्रगुज़ार !

⬣

(40) अपूर्ण

कुछ रह गया
अनकहा !
क्षेपक कहें
या चुप रहें

कुछ रह गया
अन सहा !

⬣

15

आहत युग

रचना-काल सन् 1987-97

प्रकाशन सन् 1997

कविताएँ

1 संग्राम : और
2 अमानुषिक
3 फ़तहनामा
4 त्रासदी
5 होगा कोई
6 हॉकर से
7 आत्मघात
8 लोग
9 आपात्काल
10 जागते रहना
11 ज़रूरी
12 इतिहास का एक पृष्ठ
13 वसुधैवकुटुम्बकम्
14 भ्रष्टाचार
15 अंत
16 रक्षा
17 तमाशा
18 वोटों की दुष्टनीति
19 घटनाचक्र
20 निष्कर्ष
21 आत्म-संवेदन
22 दिशा-बोध
23 स्वीकार
24 अवधान
25 सामना
26 अकारथ
27 असह
28 मूरत अधूरी
29 मजबूर
30 एक रात
31 सहसा
32 स्वागत
33 वर्षा-पूर्व
34 कामना-सूर्य
35 एक सत्य
36 उपलब्धि
37 विचार-विशेष

38 सार्थकता
39 अलम्
40 चाह
41 सम्भव (1)
42 सम्भव (2)
43 विपत्
44 स्व-तंत्र

●

(1) संग्राम; और

जिस स्वप्न को
साकार करने के लिए
सम्पूर्ण पीढ़ी ने किया
संघर्ष
अनवरत संघर्ष,
सर्वस्व जीवन-त्याग;
वह
हुआ आगत !

कर गया अंकित
हर अधर पर हर्ष,
चमके शिखर-उत्कर्ष !
प्रोज्ज्वल हुई
हर व्यक्ति के अंतःकरण में
आग,
अभिनव स्फूर्ति भरती आग !
संज्ञा-शून्य आहत देश
नूतन चेतना से भर
हुआ जाग्रत,
सघन नैराश्य-तिमिराच्छन्न कलुषित वेश
बदला दिशाओं ने,
हुआ गतिमान जन-जन
स्पन्दन-युक्त कण-कण !

आततायी निर्दयी
साम्राज्यवादी शक्ति को
लाचार करने के लिए
नव-विश्वास से ज्योतित
उतारा था समय-पट पर
जिस स्वप्न का आकार

वह,
हाँ, वह हुआ साकार !

लेकिन तभी....
अप्रत्याशित-अचानक
तीव्रगामी / धड़धड़ाते / सर्वग्राही,
\ स्वार्थ-लिप्सा से भरे
भूकम्प ने
कर दिए खंडित
श्रम-विनिर्मित
गगन-चुम्बी भवन,
युग-युग सताये आदमी के
शान्ति के, सुख के सपन !

इसलिए; फिर
दृढ़ संकल्प करना है,
वचन को पूर्ण करना है,
विकृत और धुँधले स्वप्न में
नव रंग भरना है,
कमर कस कर
फिर कठिन संघर्ष करना है !

(2) अमानुषिक

आज फिर
खंडित हुआ विश्वास,
आज फिर
धूमिल हुई
अभिनव ज़िन्दगी की आस !

ढह गये
साकार होती कल्पनाओं के महल !

बह गये
अतितीव्र अतिक्रामक
उफ़नते ज्वार में,
युग-युग सहेजे
भव्य-जीवन-धारणाओं के अचल !

आज छाये; फिर
प्रलय-घन,
सूर्य संस्कृति-सभ्यता का
फिर ग्रहण-आहत हुआ,
षड्यंत्रों-घिरा
यह देश मेरा
आज फिर मर्माहत हुआ !

फैली गंध नगर-नगर
विषैली प्राणहर बारूद की,
विस्फोटकों से
पट गयी धरती,
सुरक्षा-दुर्ग टूटे
और हर प्राचीर
क्षत-विक्षत हुई !

जन्मा जातिगत विद्वेष,
फैला धर्मगत विद्वेष,
भूँका प्रांत-भाषा द्वेष,
गँदला हो गया परिवेश !
सर्वत्र दानव वेश !
घुट रही साँसें
प्रदूषित वायु,
विष-घुला जल
छटपटाती आयु !

(3) फ़तहनामा

आतंक : सियापा !
छलनी / ख़ून-सनी
बेगुनाह लाशें,
खेतों-खलियानों में
छितरी लाशें,
सड़कों पर
बिखरी लाशें !

निरीह
माँ, पत्नी, बहनें, पुत्रियाँ,
पिता, बन्धु, मित्र, पड़ोसी
रोके आवेग
थामे आवेश
नत मस्तक
मूक विवश !

जश्न मनाता
पूजा-घर में
सतगुरु-ईश्वर-भक्त
ख़ुदा-परस्त !

(4) त्रासदी

दहशत : सन्नाटा
दूर-दूर तक सन्नाटा !

सहमे-सहमे कुत्ते
सहमे-सहमे पक्षी
चुप हैं।

लगता है
क्रूर दरिन्दों ने
निर्दोष मनुष्यों को फिर मारा है,
निर्ममता से मारा है !
रातों-रात
मौत के घाट उतारा है !
सन्नाटे को गहराता
गूँजा फिर मज़हब का नारा है !
ख़तरा,
बेहद ख़तरा है !

रात गुज़रते ही
घबराए कुत्ते रोएंगे,
भय-विह्वल पक्षी चीखेंगे !

हम
आहत युग की पीड़ा सह कर
इतिहासों का मलबा ढोएंगे !

●

(5) होगा कोई

एक आदमी / झुका-झुका / निराश
दर्द से कराहता हुआ
तबाह ज़िन्दगी लिए
गुज़र गया।

एक आदमी / झुका-झुका / हताश
चोट से लहूलुहान
चीखता हुआ / पनाह माँगता / अभी-अभी
गुज़र गया।

●

(6) हॉकर से

यह क्या
रोज़-रोज़
तरबतर ख़ून से
अख़बार फेंक जाते हो तुम
घर में मेरे ?

तमाम हादसों से रँगा हुआ
अंधाधुंध गोलियों के निशान
पृष्ठ-पृष्ठ पर स्पष्ट उभरते !

छूने में.....पढ़ने में इसको
लगता है डर,
लपटें लहराता
ज़हर उगलता
डसने आता है अख़बार !

यद्यपि
यही ख़बर सुन कर
सोता हूँ हर रात
कि कोई कहीं
अप्रिय घटना नहीं घटी,
तनाव है
किन्तु नियंत्रण में है सब !

●

(7) आत्मघात

हम ख़ुद
तोड़ रहे हैं अपने को !
ताज्जुब कि
नहीं करते महसूस दर्द !
इसलिए कि

मज़हब का आदिम बर्बर उन्माद
नशा बन कर
हावी है
दिल पर : सोच-समझ पर।
हम ख़ुद
हथगोले फोड़ रहे हैं अपने ही ऊपर !
पागलपन में
अपने ही घर में
बारूद बिछा कर सुलगा आग रहे हैं
अपने ही लोगों पर करने वार-प्रहार !

हम ख़ुद
छोड़ रहे हैं रूप आदमी का
और पहन आये हैं खालें जानवरों की
गुर्राते हैं
छीनने-झपटने जानें
अपने ही वंशधरों की !

●

(8) लोग

चल रहे हैं लोग
सिर्फ़ पीछे भीड़ के !

जाना कहाँ
नहीं मालूम,
हैं बेख़बर
निपट महरूम,

घूमते या इर्द
गिर्द अपने नीड़ के !
छाया इधर
उधर जो शोर,

आया कहीं
न आदमख़ोर ?

सरसराहट आज
जंगलों में चीड़ के !

●

(9) आपात्काल

तूफ़ान
अभी गुज़रा नहीं है !
बहुत कुछ टूट चुका है
टूट रहा है,
मनहूस रात
शेष है अभी !

जागते रहो
हर आहट के प्रति सजग
जागते रहो !
न जाने कब.....कौन
दस्तक दे बैठे
शरणागत।

ज़हर उगलता फुफकारता
आहत साँप-सा तूफ़ान
आख़िर गुज़रेगा !
सब कुछ लीलती
घनी स्याह रात भी
हो जाएगी ओझल !
हर पल
अलस्सुबः का इंतज़ार
अस्तित्व के लिए !

●

(10) जागते रहना

जागते रहना, जगत में भोर होने तक !

छा रही चारों तरफ़ दहशत
रो रही इंसानियत आहत
वार सहना, संगठित जन-शोर होने तक !

मुक्त हो हर व्यक्ति कारा से
जूझना विपरीत धारा से
जन-विजय संग्राम के घनघोर होने तक !

मौत से लड़ना, नहीं थकना
अंत तक बढ़ना नहीं रुकना
हिंसकों के टूटने - कमज़ोर होने तक !

⬣

(11) ज़रूरी

इस स्थिति को बदलो
कि आदमी आदमी से डरे,
इन हालात को हटाओ
कि आदमी आदमी से नफ़रत करे !

हमारे बुजुर्ग
हमें नसीहत दें कि
बेटे, साँप से भयभीत न होओ
हर साँप ज़हरीला नहीं होता,
उसकी फूत्कार सुन
अपने को सहज बचा सकते हो तुम।
हिंस्र शेर से भी भयभीत न होओ
हर शेर आदमख़ोर नहीं होता,

उसकी दहाड़ सुन
अपने को सहज बचा सकते हो तुम !
पशुओं से, पक्षियों से
निश्छल प्रेम करो,
उन्हें अपने इर्द-गिर्द सिमटने दो
अपने तन से उन्हें लिपटने दो,
कोशिश करो कि
वे तुमसे न डरें
तुम्हें देख न भगें,
पंख फड़फड़ा कर उड़ान न भरें,
चाहे वह
चिड़िया हो, गिलहरी हो, नेवला हो !

तुम्हारे छू लेने भर से बीरबहूटी
स्व-रक्षा हेतु
जड़ बनने का अभिनय न करे !
तुम्हारी आहट सुन
खरगोश कुलाचें भर-भर न छलाँगे
सरपट न भागे !

लेकिन
दूर-दूर रहना
सजग-सतर्क
इस आदमज़ाद से !
जो
न फुफकारता है, न दहाड़ता है,
अपने मतलब के लिए
सीधा डसता है,
छिप कर हमला करता है !
कभी-कभी यों ही
इसके-उसके परखचे उड़ा देता है !
फिर चाहे वह

आदमी हो, पशु हो, पक्षी हो,
फूल हो, पत्ती हो, तितली हो, जुगनू हो !

अपना, बस अपना
उल्लू सीधा करने
यह आदमी
बड़ा मीठा बोलता है,
सुनने वाले कानों से मधुरस घोलता है !

लेकिन
दबाए रखता है विषैला फन,
दरवाज़े पर सादर दस्तक देता है,
'जयराम जी' की करता है !
तुम्हारे गुण गाता है !
और फिर
सब कुछ तबाह कर
हर तरफ़ से तुम्हें तोड़ कर
तड़पने-कलपने छोड़ जाता है !

आदमी के सामने ढाल बन कर जाओ,
भूखे-नंगे रह लो
पर, उसकी चाल में न आओ !
ऐसा करोगे तो
सौ बरस जिओगे, हँसोगे, गाओगे !

इस स्थिति को बदलना है
कि आदमी आदमी को लूटे,
उसे लहूलुहान करे,
हर कमज़ोर से बलात्कार करे,
निर्द्वन्द्व नृशंस प्रहार करे,
अत्याचार करे !
और फिर

मंदिर, मसज़िद, गिरजाघर, गुरुद्वारा जाकर
भजन करे,
ईश्वर के सम्मुख नमन करे !

●

(12) इतिहास का एक पृष्ठ

सच है
घिर गये हैं हम
चारों ओर से
हर क़दम पर
नर-भक्षियों के चक्रव्यूहों में,
भौंचक-से खड़े हैं
लाशों-हड्डियों के
ढूहों में !

सच है
फँस गये हैं हम
चारों ओर से
हर क़दम पर
नर-भक्षियों के दूर तक
फैलाए-बिछाए जाल में,
छल-छद्म की
उनकी घिनौनी चाल में !

बारूदी सुरंगों से जकड़ कर
कर दिया निष्क्रिय
हमारे लौह-पैरों को
हमारी शक्तिशाली दृढ़ भुजाओं को !
भर दिया घातक विषैली गंध से
दुर्गन्ध से
चारों दिशाओं की हवाओं को !

सच है
उनके क्रूर पंजों ने
है दबा रखा गला,
भींच डाले हैं
हर अन्याय को करते उजागर
दहकते रक्तिम अधर !
मस्तिष्क की नस-नस
विवश है फूट पड़ने को,
ठिठक कर रह गये हैं हम !
खंडित पराक्रम
अस्तित्व / सत्ता का अहम् !

सच है कि
आक्रामक-प्रहारक सबल हाथों की
जैसे छीन ली क्षमता त्वरा
अब न हम ललकार पाते हैं
न चीख पाते हैं,
स्वर अवरुद्ध
मानवता-विजय-विश्वास का,
सूर्यास्त जैसे
गति-प्रगति की आस का !
अब न मेधा में हमारी
क्रांतिकारी धारणाओं-भावनाओं की
कड़कती तीव्र विद्युत कौंधती है,
चेतना जैसे
हो गयी है सुन्न जड़वत् !

चेष्टाहीन हैं / मजबूर हैं,
हैरान हैं,
भारी थकन से चूर हैं !

लेकिन

नहीं अब और
स्थिर रह सकेगा
आदमी का आदमी के प्रति
हिंसा-क्रूरता का दौर !

दृढ़ संकल्प करते हैं
कठिन संघर्ष करने के लिए,
इस स्थिति से उबरने के लिए !

●

(13) वसुधैवकुटुम्बकम्

जाति, वंश, धर्म, अर्थ के नामाधार पर
आदमी आदमी में करना
भेद-विभेद,
किसी को निम्न
किसी को ठहराना श्रेष्ठ,
किसी को कहना अपना
किसी को कहना पराया
आज के उभरते-सँवरते नये विश्व में
गंभीर अपराध है,
अक्षम्य अपराध है।

करना होगा नष्ट-भ्रष्ट
ऐसे व्यक्ति को / ऐसे समाज को
जो आदमी-आदमी के मध्य
विभाजन में रखता हो विश्वास
अथवा
निर्धनता चाहता हो रखना क़ायम।

सदियों के अनवरत संघर्ष का
सह-चिन्तन का
निष्कर्ष है कि
हमारी-सबकी

जाति एक है - मानव,
हमारा-सबका
वंश एक है - मनु-श्रद्धा,
हमारा-सबका
धर्म एक है - मानवीय,
हमारा-सबका
वर्ग एक है - श्रमिक।

रंग रूप की विभिन्नता
सुन्दर विविधरूपा प्रकृति है,
इस पर विस्मय है हमें
इस पर गर्व है हमें,
सुदूर आदिम युग में
लम्बी सम्पर्क दूरियों ने
हमें भिन्न-भिन्न भाषा-बोल दिए,
भिन्न-भिन्न लिपि-चिन्ह दिए।

किन्तु आज
इन दूरियों को
ज्ञान-विज्ञान के आलोक में
हमने बदल दिया है नज़दीकियों में,
और लिपि-भाषा भेद का अँधेरा
जगमगा दिया है
पारस्परिक मेल-मिलाप के प्रकाश में !

मैत्री-चाह के अदम्य आवेग ने
तोड़ दी हैं दीवारें / रेखाएँ
जो बाँटती हैं हमें
विभिन्न जातियों, वंशों, धर्मों, वर्गों में।

(14) भ्रष्टाचार

गाजर घास-सा
चारों तरफ़
क्या ख़ूब फैला है !
देश को हर क्षण
पतन के गर्त में
गहरे ढकेला है,
करोड़ों के
बहुमूल्य जीवन से
क्रूर वहशी
खेल खेला है !

वर्जित गलित
व्यवहार है,
दूषित भ्रष्ट
आचार है।

(15) अंत

जमघट ठगों का
कर रहा जम कर
परस्पर मुक्त जय-जयकार !

शीतक-गृहों में बस
फलो-फूलो,
विजय के गान गा
निश्चिन्त चक्कर खा,
हिंडोले पर चढ़ो झूलो !
जीवन सफल हो,
हर समस्या शीघ्र हल हो !

धन सर्वस्व है, वर्चस्व है,
धन-तेज को पहचानते हैं ठग,

उसकी असीमित और अपरम्पार महिमा
जानते हैं ठग !

किन्तु;
सब पकड़े गये
क़ानून में जकड़े गये
सिद्ध स्वामी; राज नेता सब !
धूर्त मंत्री; धर्मचेता सब !

अचम्भा ही अचम्भा !
हिडिंबा है; नहीं रम्भा !

मुखौटे गिर पड़े नक़ली
मुखाकृति दिख रही असली !

●

(16) रक्षा

देश की नव देह पर
चिपकी हुई
जो अनगिनत जोंके-जलौकें,
रक्त-लोलुप
लोभ-मोहित
बुभुक्षित
जोंके-जलौकें
आओ
उन्हें नोचें-उखाड़ें,
धधकती आग में झोंकें !
उनकी
आतुर उफ़नती वासना को
फैलने से
सब-कुछ लील लेने से
अविलम्ब रोकें !

देश की नव देह
यों टूटे नहीं,
ख़ुदगरज़ कुछ लोग
विकसित देश की सम्पन्नता
लूटे नहीं !

●

(17) तमाशा

तुम भी घिसे-पिटे सिक्के
फेंक कर चले गये ?
अफ़सोस
कि हम इस बार भी छले गये !

देखो
खोटा सिक्का है न
'धर्म-निरपेक्षता' का ?
और दूसरा यह
'सामाजिक न्याय-व्यवस्था' का ?
मात्र ये नहीं
और हैं सपाट घिसे काले सिक्के
'राष्ट्रीय एकता' के / 'संविधान-सुरक्षा' के
जो तुम इस बार भी
विदूषक के कार्य-कलापों-सम
फेंक कर चले गये !

तुम तो भारत-भाग्य-विधाता थे !
तुमसे तो
चाँदी-सोने के सिक्कों की
की थी उम्मीद,
किन्तु की कैसी मिट्टी पलीद !
अद्‌भुत अंधेरे तमाशा है
घनघोर निराशा है,

यह किस जनतंत्र-प्रणाली का ढाँचा है ?
जनता के मुँह पर
तड़-तड़ पड़ता तीव्र तमाचा है !

(18) वोटों की दुष्टनीति

दलितों की गलियों से
कूचों और मुहल्लों से,
उनकी झोपड़पट्टी के
बीचों-बीच बने-निकले
ऊबड़-खाबड़, ऊँचे-नीचे
पथरीले-कँकरीले सँकरे पथ से
निकल रहा है
दलितों का
आकाश गुँजाता, नभ थर्राता
भव्य जुलूस !

नहीं किराये के
गलफोडू नारेबाज़ नक़लची
असली है, सब असली हैं जी
मोटे-ताज़े, हट्टे-कट्टे
मुश्तंडे-पट्ठे,
कुछ तोंद निकाले गोल-मटोल
ओढ़े महँगे-महँगे खोल !

सब देख रहे हैं कौतुक
दलितों के
नंग-धड़ंगे घुटमुंडे
काले-काले बच्चे,
मैली और फटी
चड्डी-बनियानों वाले
लड़के-फड़के,

झोंपड़ियों के बाहर
घूँघट काढ़े दलितों की माँ-बहनें
क्या कहने !
चित्र-लिखी-सी देख रही हैं,
पग-पग बढ़ता भव्य जुलूस,
दलितों का रक्षक, दलितों के हित में
भरता हुँकारें, देता ललकारें
चित्र खिँचाता / पीता जूस !
निकला अति भव्य जुलूस !
कल नाना टीवी-पर्दों पर
दुनिया देखेगी
यह ही, हाँ यह ही
दलितों का भव्य जुलूस !

अफ़सोस !
नहीं है शामिल इसमें
दलितों की टोली,
अफ़सोस !
नहीं है शामिल इसमें
दलितों की बोली !

(19) घटनाचक्र

हमने नहीं चाहा
कि इस घर के
सुनहरे-रुपहले नीले
गगन पर
घन आग बरसे !

हमने नहीं चाहा
कि इस घर का
अबोध-अजान बचपन

और अल्हड़ सरल यौवन
प्यार को तरसे !

हमने नहीं चाहा
कि इस घर की
मधुर स्वर-लहरियाँ
खामोश हो जाएँ,
यहाँ की भूमि पर
कोई
घृणा प्रतिशोध हिंसा के
विषैले बीज बो जाए !

हमने नहीं चाहा
प्रलय के मेघ छाएँ
और सब-कुछ दें बहा,
गरजती आँधियाँ आएँ
चमकते इंद्रधनुषी
स्वप्न-महलों को
हिला कर
एक पल में दें ढहा !

पर,
अनचहा सब
सामने घटता गया,
हम
देखते केवल रहे,
सब सामने
क्रमशः
उजड़ता टूटता हटता गया !

⬣

(20) निष्कर्ष

उसी ने छला
अंध जिस पर भरोसा किया,
उसी ने सताया
किया सहज निःस्वार्थ जिसका भला !

उसी ने डसा
दूध जिसको पिलाया,
अनजान बन कर रहा दूर
क्या ख़ूब रिश्ता निभाया !

अपरिचित गया बन
वही आज
जिसको गले से लगाया कभी,
अजनबी बन गया
प्यार,
भर-भर जिसे गोद-झूले झुलाया कभी !

हमसफ़र
मुफ़लिसी में कर गया किनारा,
ज़िन्दगी में अकेला रहा
और हर बार हारा !

⬣

(21) आत्म-संवेदन

हर आदमी
अपनी मुसीबत में
अकेला है !
यातना की राशिसारी
मात्र उसकी है !
साँसत के क्षणों में
आदमी बिल्कुल अकेला है !

संकटों की रात
एकाकी बितानी है उसे,
घुप अँधेरे में
किरण उम्मीद की जगानी है उसे !
हर चोट
सहलाना उसी को है,
हर सत्य
बहलाना उसी को है !

उसे ही
झेलने हैं हर क़दम पर
आँधियों के वार,
ओढ़ने हैं वक्ष पर चुपचाप
चारों ओर से बढ़ते-उमड़ते ज्वार !
सहनी उसे ही ठोकरें
दुर्भाग्य की,
अभिशप्त जीवन की,
कठिन चढ़ती-उतरती राह पर
कटु व्यंग्य करतीं
क्रूर-क्रीड़ाएँ
अशुभ प्रारब्ध की !
उसे ही
जानना है स्वाद कड़वी घूँट का,
अनुभूत करना है
असर विष-कूट का !
अकेले
हाँ, अकेले ही !

क्योंकि सच है यह
कि अपनी हर मुसीबत में
अकेला ही जिया है आदमी !

(22) दिशा-बोध

निरीहों को
हृदय में स्थान दो :
सूनापन-अकेलापन मिटेगा !

जिनको ज़रूरत है तुम्हारी
जाओ वहाँ,
मुसकान दो उनको
अकेलापन बँटेगा !

अनजान प्राणी
जोकि
चुप गुमसुम उदास-हताश बैठे हैं
उन्हें बस, थपथपाओ प्यार से
मनहूस सन्नाटा छँटेगा !

ज़िन्दगी में यदि
अँधेरा-ही अँधेरा है,
न राहें हैं, न डेरा है,
रह-रह गुनगुनाओ
गीत को साथी बनाओ
यह क्षणिक वातावरण ग़म का
हटेगा !
ऊब से बोझिल
अकेलापन कटेगा

(23) स्वीकार

अकेलापन नियित है,
हर्ष से
झेलो इसे !

अकेलापन प्रकृति है,
कामना-अनुभूति से
ले लो इसे !

इससे भागना-बचना
विकृति है !
मात्र अंगीकर करना
एक गति है !

इसलिए स्वेच्छा वरण,
मन से नमन !

(24) अवधान

कश-म-कश की ज़िन्दगी में
आदमी को चाहिए
कुछ क्षण अकेलापन !
कर सके
गुज़रे दिनों का आकलन !
किसका सही था आचरण !
कौन कितना था ज़रूरी
या कि किसने की तुम्हारी चाह पूरी,
प्यार किसका पा सके,
किसने किया वंचित कपट से
की उपेक्षा
और झुलसाया
घृणा-भरती लपट से !

जानना यदि सत्य जीवन का
            तथ्य जीवन का
अकेलापन बताएगा तुम्हें,
            सार्थक जिलाएगा तुम्हें !

वरदान
सूनापन अकेलापन !
किसी को मत पुकारो,
पा इसे
मन में न हारो !
रे अकेलापन महत् वरदान है,
अवधान है !

(25) सामना

पत्थर-पत्थर
जितना पटका
उतना उभरा !
पत्थर-पत्थर
जितना कुचला
उतना उछला !

कीचड़ - कीचड़
जितना धोया
उतना सुथरा !

कालिख - कालिख
जितना साना
जितना पोता
उतना निखरा !
असली सोना
बन कर निखरा !

ज़ंजीरों से
तन को जब - जब
कस कर बाँधा
खुल कर बिखरा

उत्तर - दक्षिण
पूरब - पश्चिम
बह - बह बिखरा !
भारी भरकम
चंचल पारा
बन कर लहरा !

हर ख़तरे से
जम कर खेला,
वार तुम्हारा
बढ़ कर झेला !

(26) अकारथ

दिन रात भटका हर जगह
सुख-स्वर्ग का संसार पाने के लिए !

कलिका खिली या अधखिली
झूमी मधुप को जब रिझाने के लिए !

सुनसान में तरसा किया
तन-गंध रस-उपहार पाने के लिए !

क्या-क्या न जीवन में किया
कुछ पल तुम्हारा प्यार पाने के लिए !

डूबा व उतराया सतत
विश्वास का आधार पाने के लिए !

रख ज़िन्दगी को दाँव पर
खेला किया, बस हार जाने के लिए !

(27) असह

बहुत उदास मन
थका-थका बदन !
बहुत उदास मन !

उमस भरा गगन
थमा हुआ पवन
घुटन घुटन घुटन !

घिरा तिमिर सघन
नहीं कहीं किरन
भटक रहे नयन !

बहुत निराश मन
बहुत हताश मन
सुलग रहा बदन
जलन जलन जलन !

(28) मूरत अधूरी

तय है कि अब यह ज़िन्दगी
मुहलत नहीं देगी
अब और तुमको ज़िन्दगी
फ़ुरसत नहीं देगी !

गुज़रे दिनों की याद कर, कब-तक दहोगे तुम ?
विपरीत धारों से उलझ, कितना बहोगे तुम ?
रे कब-तलक तूफ़ान के धक्के सहोगे तुम ?

यों खेलने की, ज़िन्दगी
नौबत नहीं देगी,

अब और तुमको ज़िन्दगी
            कूवत नहीं देगी !

साकार हो जाएँ असम्भव कल्पनाएँ सब,
आकार पा जाएँ चहचहाती चाहनाएँ सब,
अनुभूत हों मधुमय उफ़नती वासनाएँ सब,

यह ज़िन्दगी ऐसा कभी
            जन्नत नहीं देगी,
यह ज़िन्दगी ऐसी कभी
            किस्मत नहीं देगी !

(29) मजबूर

ज़िन्दगी जब दर्द है तो
हर दर्द सहने के लिए
मजबूर हैं हम !

राज़ है यह ज़िन्दगी जब
खामोश रहने के लिए
मजबूर हैं हम !

है न जब कोई किनारा
तो सिर्फ़ बहने के लिए
मजबूर हैं हम !

ज़िन्दगी यदि ज़लज़ला है
तो टूट ढहने के लिए
मजबूर हैं हम !

आग में जब घिर गये हैं
अविराम दहने के लिए

मजबूर हैं हम !

सत्य कितना है भयावह !
हर झूठ कहने के लिए
मजबूर हैं हम !

(30) एक रात

अँधियारे जीवन-नभ में
बिजुरी-सी चमक गयीं तुम !

सावन झूला झूला जब
बाँहों में रमक गयीं तुम !

कजली बाहर गूँजी जब
श्रुति-स्वर-सी गमक गयीं तुम !

महकी गंध त्रियामा जब
पायल-सी झमक गयीं तुम !

तुलसी-चौरे पर आ कर
अलबेली छमक गयीं तुम !

सूने घर-आँगन में आ
दीपक-सी दमक गयीं तुम !

(31) सहसा

आज तुम्हारी आयी याद,
मन में गूँजा अनहद नाद !
            बरसों बाद
            बरसों बाद !

साथ तुम्हारा केवल सच था,
हाथ तुम्हारा सहज कवच था,
सब-कुछ पीछे छूट गया, पर
जीवित पल-पल का उन्माद !
आज तुम्हारी आयी याद !

बीत गये युग होते-होते,
रातों-रातों सपने बोते,
लेकिन उन मधु चल-चित्रों से
जीवन रहा सदा आबाद !
आज तुम्हारी आयी याद !

●

(32) स्वागत[1]

जूही मेरे आँगन में महकी,
रंग-बिरंगी आभा से लहकी !

चमकीले झबरीले कितने
इसके कोमल-कोमल किसलय,
है इसकी बाँहों में मृदुता
है इसकी आँखों में परिचय,

भोली-भोली गौरैया चहकी
लटपट मीठे बोलों में बहकी !

लम्बी लचकीली हरिआई
डालों डगमग-डगमग झूली,
पाया हो जैसे धन स्वर्गिक
कुछ-कुछ ऐसी हूली-फूली,

लगती है कितनी छकी-छकी
गह-गह गहनों-गहनों गहकी !

महकी, मेरे आँगन में महकी
जूही मेरे आँगन में महकी !
(1 पौत्री इरा के प्रति।)

●

(33) वर्षा-पूर्व

आज छायी है घटा
काली घटा !

महीनों की
तपन के बाद
अहर्निश
तन-जलन के बाद

हवाओं से लिपट
लहरा उठा
ऊमस भरा वातावरण-आँचर !

किसी ने
डाल दी तन पर
सलेटी बादलों की
रेशमी चादर !

मोह लेती है छटा,
मोद देती है घटा,
काली घटा !

●

(34) कामना-सूर्य

(1)

हर व्यक्ति सूरज हो
ऊर्जा-भरा,
तप-सा खरा,
हर व्यक्ति सूरज-सा धधकता
आग हो,
बेलौस हो, बेलाग हो !

(2)

हर व्यक्ति सूरज-सा
प्रखर,
पाबन्द हो,
रोशनी का छन्द हो !
जाए जहाँ
कण-कण उजागर हो,
असमंजस अँधेरा
कक्ष-बाहर हो !

(3)

हर व्यक्ति सूरज-सा
दमकता दिखे,
ऊष्मा भरा
किरणें धरे,
हर व्यक्ति सूरज-सा
चमकता दिखे !

(35) एक सत्य

बन्धन
उभरता है - चुनौती बन
अस्वीकृति बन,
जगाता है सतत
विद्रोह / बल / प्रतिरोध /
ज्वाला / क्रोध।

बन्धन
उभरता - स्नेह की उपलब्धि बन,
स्वीकार बन,
जगाता
मोह / अक्षय सन्धि / अर्पण चाह /
जीवन - दाह।

(36) उपलब्धि

सपनों के सहारे
एक लम्बी उम्र
हमने
सहज ही काट ली
बड़े सुख से
सहन से
सब्र से !
मन के गगन पर
मुक्त मँडराती व घहराती
गहन बदली अभावों की
उड़ा दी, छाँट दी
हमने
अटल विश्वास के
दृढ़ वेगवाही वातचक्रों से

दिन के, रैन के
अनगिनत सपनों के भरोसे !

मौन रह अविराम जी ली
यह कठिनतम ज़िन्दगी
हमने
अमन से, चैन से !

सपनो !
महत् आभार,
वृहत् आभार !

(37) विचार-विशेष

सपने आनन-फ़ानन साकार नहीं होते
पीढ़ी-दर-पीढ़ी क्रम-क्रम से सच होते हैं,
सपने माणव-मंत्रों से सिद्ध नहीं होते
पीढ़ी-दर-पीढ़ी धृति-श्रम से सच होते हैं !

(38) सार्थकता

जिस दिन
मानव-मानव से प्यार करेगा,
हर भेद-भाव से
ऊपर उठ कर,
भूल
अपरिचित-परिचित का अन्तर
सबका स्वागत-सत्कार करेगा,
पूरा होगा
उस दिन सपना !
विश्व लगेगा
उस दिन अपना !

(39) अलम्

आहों और कराहों से
नहीं मिटेगी
आहत तन की, आहत मन की पीर !

दृढ़ आक्रोश उगलने से
नहीं कटेगी
हाथों-पैरों से लिपटी ज़ंजीर !

जीवन-रक्त बहाने से
नहीं घटेगी
लहराती लपटों की तासीर !

आओ
पीड़ा सह लें,
बाधित रह लें,
पल-पल दह लें !

करवट लेगा इतिहास,
इतना रखना विश्वास !

(40) चाह

जीवन अबाधित बहे,
जय की कहानी कहे !

आशीष-तरु-छाँह में
जन-जन सतत सुख लहे !

दिन-रात मन-बीन पर
प्रिय गीत गाता रहे !

मधु-स्वप्न देखे सदा,
झूमे हँसे गहगहे !

मायूस कोई न हो,
लगते रहे क़हक़हे !

हर व्यक्ति कुन्दन बने,
अन्तर-अगन में दहे !

अज्ञात प्रारब्ध का
हर वार हँस कर सहे !

●

(41) सम्भव (1)

आओ
चोट करें,
घन चोट करें
परिवर्तन होगा,
धरती की गहराई में
कम्पन होगा,
चट्टानों की परतें
चटखेंगी,
अवरोधक टूटेंगे,
फूटेगी जल-धार !

आओ
चोट करें,
मिल कर चोट करें
स्थितियाँ बदलेंगी,
पत्थर अँकुराएंगे,
लह-लह
पौधों से ढक जाएंगे !

(42) सम्भव (2)

आओ
टकराएँ,
पूरी ताक़त से टकराएँ,
आख़िर
लोहे का आकार
हिलेगा,
बंद सिंह-द्वार
खुलेगा !
मुक्ति मशालें थामे
जन-जन गुज़रेंगे,
कोने-कोने में
अपना जीवन-धन खोजेंगे !
नवयुग का तूर्य बजेगा,
प्राची में सूर्य उगेगा !
आओ
टकराएँ,
मिल कर टकराएँ,
जीवन सँवरेगा,
हर वंचित-पीड़ित सँभलेगा !

●

(43) विपत्

आख़िर,
गया थम !
उग्र
चीखता
तोड़ता - फोड़ता
लीलता
क्रुद्ध अंधड़ !

तबाही.... तबाही.... तबाही !

इधर भी; उधर भी
यहाँ भी; वहाँ भी !
दीखते
खण्डहर.... खण्डहर.... खण्डहर,
अनगिनत शव !
सर्वत्र निस्तब्धता,
थम गया रव !

दबे,
चोट खाये,
रुधिर - सिक्त
मानव... मवेशी... परिन्दे
विवश तोड़ते दम !

भयाक्रांत सुनसान में
सनसनाती हवा,
खा गया
अंग-प्रति-अंग
लकवा !
अपाहिज
थका शक्ति-गतिहीन जीवन,
विगत-राग धड़कन !

भयानक क़हर
अब गया थम,
बचे कुछ
उदासी-सने चेहरे नम !

सदा के लिए
खो

घरों-परिजनों को,
बिलखते
बेसहारा !
असह
कारुणिक
द्रश्य सारा !

चलो,
तेज़ अंधड़
गया थम !

गहर ग़मज़दा हम !

(44) स्व-तंत्र

आकाश है सबके लिए,
अवकाश है सबके लिए !

विहगो !
उड़ो,
उन्मुक्त पंखों से उड़ो !

ऊँची उड़ानें
शक्ति-भर ऊँची उड़ानें
दूर तक
विहगो भरो !
विश्वास से ऊपर उठो;
गन्तव्य तक पहुँचो,
अभीप्सित लक्ष्य तक पहुँचो !

ऊँचे और ऊँचे और ऊँचे
तीव्र ध्वनि-गति से उड़ो,

निडर होकर उड़ो !
आकाश यह
सबके लिए है
असीमित
शून्याकाश में
जहाँ चाहो मुड़ो,
जहाँ चाहो उड़ो

ऐसे मुड़ो; वैसे मुड़ो,
ऐसे उड़ो; वैसे उड़ो,
सुविधा व सुभीते से उड़ो !

अपने प्राप्य को
        हासिल करो !
स्वच्छंद हो, निर्द्वन्द्व हो,
ऊर्ध्वगामी, ऊर्ध्वमुख;
गगनचुम्बी उड़ानें
दूर तक
        विहगो भरो !

न हो
कोई किसी की राह में,
बाधक न हो
कोई किसी की
पूर्ण होती चाह में !

स्वाधीन हों सब
स्वानुशासन में बँधे,
हम-राह हों
सँभले सधे !

16

अनुभूत क्षण

रचना-काल सन् 1997-2000
प्रकाशन सन् 2001

कविताएँ

1 प्रेय
2 भाग्य-विरुद्ध
3 संघर्ष
4 अनुभव-सिद्ध
5 सावधान
6 इच्छित
7 अदम्य
8 सार्थकता
9 जीवन
10 प्रतिक्रिया
11 शुभकामनाएँ
12 यथार्थ : आदर्श
13 साहस
14 कारगिल प्रयाण पर
15 हमारा गौरव
16 निष्फल
17 दीप्र
18 संकल्पित
19 अभिलषित
20 बसंती हवा
21 कुहराच्छादित नभ
22 शीतार्द्र
23 हेमन्त
24 निष्कर्ष
25 तुम ...
26 प्रतीक
27 तुम
28 सुख-बोध
29 उपकृत
30 उत्सव
31 असंगत
32 एकाकी
33 अकेला
34 पटाक्षेप
35 विस्मय
36 मर्माहत
37 खंडित मन
38 संन्यास-चेतना
39 संबंध

40 सहवर्ती
41 वेदना
42 अंतिम अनुरोध
43 सलाह
44 दम्भ
45 अभिप्रेत वंचित
46 अप्रभावित
47 आत्म-निरीक्षण
48 वास्तविकता
49 विराम-पूर्व (1)
50 विराम-पूर्व (2)
51 बोध
52 सच है
53 स्वागत 21वीं शती का
54 अभिनन्दित क्षण
55 विजयोल्लास

(1) प्रेय

आस्था - दीप / जलता रहे
सपना एक / पलता रहे
आत्म-साधन के लिए इतना बहुत है !

जीवन - चक्र / चलता रहे
यम का पाश / छलता रहे
प्राण - धारण के लिए इतना बहुत है !

⬣

(2) भाग्य-विरुद्ध

प्रतिपल जब हिलते हैं
रचना-धर्मी हाथ,
चरणों का मिलता है
जब गति-धर्मी साथ,

तब बनती है तसवीर !
तब बनती है तक़दीर !

⬣

(3) संघर्ष

घुटन, बेहद घुटन है !
होंठ.... / हाथ.... / पैर
निष्क्रिय बद्ध
जन - जन क्षुब्ध.... / क्रुद्ध !

प्राण - हर
आतंक - ही - आतंक
है परिव्याप्त
दिशाओं में / हवाओं में !

इस असह वातावरण को
बदलना
ज़रूरी है !
इंसानियत को
बचाने के लिए
हर आदमी का अब सँभलना
ज़रूरी है !

जलन, बेहद जलन है,
तपन, बेहद तपन है !

हर क्षितिज
गहरे धुएँ से है घिरा
आग....
शोले उगलती आग,
लहराती
आकाश छूतीं अग्नि लपटें !
इनको बुझाना
ज़रूरी है !

⬣

(4) अनुभव-सिद्ध

तय है कि
काली रात गुज़रेगी,
भयावह रात गुज़रेगी !
असफल रहेगा
हर घात का आघात,
पराजित रात गुज़रेगी !

यक़ीनन हम
मुक्त होंगे
त्रासदायी स्याह घेरे से,

रू-ब-रू होंगे
स्वर्णिम सबेरे से,
अरुणिम सबेरे से !

तय है
अँधेरे पर
उजाले की विजय
तय है !

पक्षी चहचहाएंगे,
मानव प्रभाती गान गाएंगे !

उतरेंगी
गगन से सूर्य-किरणें
नृत्य की लय पर,
धवल मुसकान भर - भर !

तय है कि
संघातक कठिन दुःसह अँधेरी
रात गुज़रेगी !

कुचक्रों से घिरा आकाश
बिफरेगा,
आहत ज़िन्दगी इंसान की
सँवरेगी !

⬣

(5) सावधान

अँधेरा है, अँधेरा है,
बेहद अँधेरा है !
घुप अँधेरे ने
सारी सृष्टि को

अपने जाल में / जंजाल में
धर दबोचा है,
घेरा है !

नहीं; लेकिन
तनिक भयभीत होना है,
हार कर मन में
पल एक निष्क्रिय बन
न सोना है !
तय है
कुछ क्षणों में
रोशनी की जीत होना है !

आओ
रोशनी के गीत गाएँ !
सघन काली अमावस है
पर्व दीपों का मनाएँ !

तम घटेगा
तम छँटेगा
तम हटेगा !

⬣

(6) इच्छित

घूमा बहुत हूँ
घन अँधेरे में,
भटका बहुत हूँ
मन-अँधेरे में !

लिए
तम-राख लथपथ तन,
अविराम घूमा हूँ,

दिन - रात घूमा हूँ !

अब तो
रोशनी की धार में
जम कर नहाऊंगा,
सत्य के
आलोक-झरने में उतर
शेष जीवन-भर नहाऊंगा !

रोशनी में डूब कर
रोशनी में तैर कर
तन बहाऊंगा
मन बहाऊंगा
जी - भर नहाऊंगा !

(7) अदम्य

दूर-दूर तक
छाया सघन कुहर
कुहरे को भेद
डगर पर बढ़ते हैं हम !

चट्टानों ने जब-जब
पथ अवरुद्ध किये
चट्टानों को तोड़
नयी राहें गढ़ते हैं हम !

ठंडी तेज़ हवाओं के
वर्तुल झोंके आते हैं
तीव्र चक्रवातों के सम्मुख
सीना ताने
पग-पग अड़ते हैं हम !

सागर-तट पर टकराता
भीषण ज्वारों का पर्वत
उमड़ी लहरों पर चढ़
पूरी ताक़त से लड़ते हैं हम !

दरियाओं की बाढ़ें
तोड़ किनारे बहती हैं
जल भँवरों / आवेगों को
थाम;
सुरक्षा-यान चलाते हैं हम !

काली अंधी रात क़यामत की
धरती पर घिरती है जब-जब
आकाशों को जगमग करते
आशाओं के / विश्वासों के,
सूर्य उगाते हैं हम !
मणि-दीप जलाते हैं हम !

ज्वालामुखियों ने जब-जब
उगली आग भयावह
फैले लावे पर
घर अपना
बेख़ौफ़ बनाते हैं हम !

भूकम्पों ने जब-जब
नगरों गाँवों को नष्ट किया
पत्थर के ढेरों पर
बस्तियाँ नयी
हर बार बसाते हैं हम !

परमाणु-बमों / उद्जन-शस्त्रों की
मारों से

आहत भू-भागों पर
देखो कैसे
जीवन का परचम फहराते हैं हम !
चारों ओर
नयी अँकुराई हरियाली
लहराते हैं हम !

कैसे तोड़ोगे इनके सिर ?
कैसे फोड़ोगे इनके सिर ?

दुर्दम हैं,
इनमें अद्‌भुत ख़म है !

काल-पटल पर अंकित है
'जीवन-अपराजित है !'

●

(8) सार्थकता

आओ
दीवारों के घेरों
परकोटों से
बाहर निकलें !
अपने सुख-चिन्तन से
ऊपर उठ कर
जग-क्रन्दन को
स्वर-सरगम में बदलें !

मुरझाये रोते चेहरों को
मुसकानें बाँटें,
उनके जीवन-पथ पर
छितराया कुहरा छाँटें !
रँग दें

घनघोर अँधेरे को
जगमग तीव्र उजालों से,

त्रासों और अभावों की
निर्मम मारों से,
हारों को, लाचारों को
ढक दें
लद-लद पीले-लाल गुलाबों की
जयमालों से !

घर-घर जाकर
सहमे-सहमे बच्चों को
प्यारी-प्यारी मोहक किलकारी दें,

कँकरीली और कँटीली परती पर
रंग-बिरंगी लहराती फुलवारी दें !

●

(9) जीवन

हर आगत पल का
स्वागत है !

मेरे हाथ पकड़
उठता है दिन,
मेरे कंधों पर चढ़
बढ़ता है दिन !

मेरे मन से
अभिनव रचना
करता है दिन,
मेरे तन से
सृष्टि नयी

गढ़ता है दिन !

लड़ मेरे बल पर
जीता है दिन,
क्षण-क्षण मेरे जीने पर
जीता है दिन !

मेरी गति से
सार्थक होता काल अमर,
मैं ही हूँ
अविजित अविराम समर,

मेरे सम्मुख हर
पर्वत-बाधा नत है,
हर आगामी कल का
स्वागत है !

●

(10) प्रतिक्रिया

अणु-विस्फोट से
जाग्रत महात्मा बुद्ध की बोली

सुनिश्चित शान्ति हो,
सर्वत्र
सद्गति-सतग्रह की कान्ति हो !
सुरक्षित
सभ्यता, संस्कृति, मनुजता हो,
दुनिया से लुप्त दनुजता हो !

मानव-लोक
हिंसा-क्रूरता से मुक्त हो,
परस्पर प्रेम-ममता युक्त हो !

मना पाये नहीं
पशु-बल कहीं भी अब
मरण-त्योहार !

सार्थक तभी
यह ज्ञान का, विज्ञान का
उत्कृष्ट आविष्कार !
अनुपम और अद्भुत
मानवी उपहार !

●

(11) शुभकामनाएँ

रक्त-रंजित
इस शती का वर्ष अंतिम
शक्ति-पूजा का
तपस्या-साधना का वर्ष हो !

आगत शती में
जय मनुजता की दनुजता पर
सुनिश्चित हो,
प्रत्येक मुख पर
सिद्धि की उपलब्धि का
अंकित
सरल-सुन्दर हर्ष हो !

मानव-हृदय से
दुष्टता, पशुता, निठुरता दूर हो,
हिंसा-दर्प सारा चूर हो;
दृष्टि में ममता भरी भरपूर हो !

हर व्यक्ति दूषित वृत्तियाँ त्यागे,
परस्पर प्रेम हो

सद्‌भावना जागे !
हर व्यक्ति को हो प्राप्त
नव-बुद्धत्व
मानस-तीर्थ।
आत्मा का सतत उत्कर्ष हो !
शुभ-कामनाओं से भरा नव वर्ष हो !

(12) यथार्थ / आदर्श

जीवन और जगत जैसा हमको प्रत्यक्ष दिखा,
वैसा, हाँ केवल वैसा, हमने निष्पक्ष लिखा !

मानव-समता का स्वप्न, हमारा आदर्श सदा,
जिसको धारण कर, जन-जन जीवन-उत्कर्ष सधा !

प्रतिश्रुत हैं हम, शोषण-रहित समाज बनाएंगे,
प्रतिबद्ध कि हम जगती पर ही स्वर्ग बसाएंगे !

इतिहास बनाने की अभिनव दृष्टि हमारी है,
उत्कृष्ट समुन्नत नव जीवन-सृष्टि प्रसारी है !

(13) साहस

माना, निरीह है आदमी किसी
अनहोनी के प्रति,
चाहे कितना समर्थ हो कोई
पर, जीतती नियति !
क्षण में ढह जाती मानव-निर्मिति
बलवान है प्रकृति,

है लेकिन स्वीकार हर चुनौती
हो जो भी परिणति,

नहीं रुकेगी, मानव ज्ञान और
विज्ञान की प्रगति !

(14) कारगिल-प्रयाण पर

सीमाओं की रक्षा करने वाले वीर जवानो !
दुश्मन के शिविरों पर चढ़ कर भारी प्रलय मचा दो,
मातृभूमि पर बर्बर हत्यारों की बिखरें लाशें
तोपों के गर्जन-तर्जन से दुश्मन को दहला दो !

(15) हमारा गौरव

भारत का चट्टानी सीना है
कार्गिल !
टकराएँ चाहे कितने ही
अणु-बम
इसका पाया लेकिन
कभी न सकता हिल !

छल और कपट से
लुक-छिप कर घुस आये
दुश्मन को धकियानेवाला
पर्वतराज कारगिल !
नहीं कभी यह हुआ / न होगा
गाफ़िल !
बर्बर धोखेबाज़ों की
लाशों का ढेर लगाने वाला
काल - कारगिल !
अब तो भैया
इसका नाम सिर्फ़
दुश्मन का दहलाता दिल !

सीमा का प्रहरी सैनिक है यह
कार - कारगिल !
भारत-माता का स्वस्तिक है यह
कार - कारगिल !

●

(16) निष्फल

प्रमाणित यह कि
जिसके पास
है अधिकार; है धन
शक्तिशाली
वह।

शक्तिशाली ने
स्वार्थ-साधन में,
वासनाओं की अहर्निश पूर्ति में
दुर्बल-वर्ग को
लूटा - खसोटा,
जिस तरह चाहा
समय भोगा !

हर जगह निर्मित
वैभव-द्वीप उसके,
फैला हुआ है
चक्रवर्ती राज्य उसका,
उसी का गूँजता सर्वत्र
जय-जयकार !

दुष्कर दीखता बनना
शोषण-मुक्त, समता-युक्त
अभिनव विश्व का आकार।
शक्तिशाली

क्यों नहीं बनता
महा मानव,
न्याय-धर्मी लोकप्रिय
अवतार !

●

(17) दीप्र

अवशेष स्वयं को कर
दहता जो
जीवन - भर !

दूर-दूर तक
राहों का
हरता अँधियारा,
अन्तर - ज्वाला से
घर - घर
भरता उजियारा :

उसके सर्वोत्तम सक्षम
प्रतिनिधि हम,
तम-हर ज्योतिर्गम !

(18) संकल्पित

प्रज्ज्वलित-प्रकाशित
दीप हैं हम !
सिर उठाये,
जगमगाती रोशनी के
दीप हैं हम !
वेगवाही अग्नि-लहरों से
लहकते चिन्ह-धर,
ध्रुव-दीप हैं हम !

शांत प्रतिश्रुत
दृढ़ प्रतिज्ञाबद्ध
छायी घन-अँधेरी शक्ति का
पीड़न-भरा
साम्राज्य हरने के लिए,
सर्वत्र
नव आलोक-लहरों से
उफ़नता ज्वार
भरने के लिए !

हमारा दीप्त
द्युति-अस्तित्व
करता लोक को आश्वस्त,
जन-समुदाय की प्रत्येक आशंका
विनष्ट-निरस्त !
भर उठता
सहज हर्षानुभूति से
हर दबा भय-त्रस्त !
होता एक क्षण में
रुद्ध मार्ग प्रशस्त !
प्रतिबद्ध हैं हम
व्यक्ति के मन में
उगी-उपजी
निराशा का, हताशा का
कठिन संहार करने के लिए !
हर हत हृदय में
प्राणप्रद उत्साह का
संचार करने के लिए !

(19) अभिलषित

दिन भर
धरती पर लेटी पसरी
रेशम जैसी
चिकनी-चिकनी दूब से,
आँगन में उतरी
खुली-खुली
फैली बिखरी
हेमा-हेमा धूप से,
यह अलबेला
एकाकी
जम कर खेला !
दिन भर खेला !

दिन भर
ताज़े टटके गदराए
फूलों की छाँह में,
हरिआए - हरिआए
शूलों की बाँह में,
उनकी मादक-मादक गंधों में
अटका-भटका;
ऊला-भूला !
शर्मीली-शर्मीली भोली
कलियों की,
लम्बी-लम्बी पतली-पतली
फलियों की,
डालों-डालों झूला !
लिपट-लिपट कर
टहनी-टहनी पत्ती-पत्ती झूला !
दिन भर झूला !

दिन भर
सुन्दर रंगों छापों वाली साड़ी पहने
उड़ती मुग्धा तितली पर,
वासन्ती रंग-रँगी
मदमाती प्रेम-प्रगल्भा
प्रौढ़ा सरसों पर,
जी भर राँचा,
संग-संग खेतों-खेतों नाचा !
दिन भर नाचा !

दिन भर
इमली के / अमरूदों के पेड़ों पर
चोरी-चोरी डोला,
झरबेरी के कानों में
जा-जा,
चुपके-चुपके
जाने क्या-क्या बोला !
दिन भर डोला !

●

(20) बसंती हवा

तन को
छूती गुज़री
जो मतवाली युवा हवा
इतनी अच्छी
पहले कभी
न, सचमुख, मुझे लगी !

मन को
ठंडक पहुँचाती गुज़री
जो मदहोश हवा
ऐसी मोहक

पहले कभी
न, सचमुच, मुझे लगी !

बिलकुल अपनी सगी-सगी,
बेहद.... बेहद प्यार पगी,
ठगने आयी थी; स्वयं ठगी !

लिपट-लिपट कर
बाहों - बाहों झूली,
सिहर-सिहर कर
झूमी,
सुधबुध भूली !

वस्त्रों से खेली,
केशों से खेली,
अंग - अंग से खेली !
ईश्वर जाने !
अल्हड़पन में
कितनी मदगंधा ले ली !

●

(21) कुहराच्छादित-नभ

पड़ा हुआ है कम्बल ओढ़े
पसरा-पसरा जागा अम्बर !

दिन चढ़ आया कितना; फिर भी
हिलने का लेता नाम नहीं,
केवल सोना - सोना; इसका,
किंचित भी कोई काम नहीं,
ठंड अधिक का किये बहाना
पक्का बना हुआ घन-चक्कर !
गर्म दुपहरी आने पर अब

लगता, सचमुच, कुछ हिला-डुला,
दूर क्षितिज की सीमाओं पर
दिखता कम्बल भी खुला-खुला,
    तनिक क्षणों में, बाँधेगा लो
    सारा अपना बोरा-बिस्तर !

●

(22) शीतार्द्र

उतरी धीमे-धीमे
फिर-फिर ओस रात-भर !

हिम-शीतल सन्नाटा
छाया सुप्त धरा पर,
फूलों - पत्तों नाची
प्रीति-पुतरिका बनकर,
    कारीगर कुहरे ने
    किया सृजन कनात-घर !

यहाँ-वहाँ जगह-जगह
बिखरे जल-कण हीरे,
घात लगाये फिरते
पवन झकोरे धीरे,
    पहरेदार सरीखा
    जागा, हर प्रपात, झर !

ख़ूब जमी है महफ़िल
अध्यक्ष बनी रजनी,
प्रिय को कस कर बाँधे
जागी-सोयी सजनी,
    किसी दिशा में दबका
    बैठा, नव प्रभात, डर !

●

(23) हेमन्त

भीगी-भीगी भारी रात,
नींद न आती सारी रात !

घोर अँधेरा चारों ओर
दूर अभी तो लोहित भोर
थमा हुआ है सारा शोर
    ऐसे मौसम में चुप क्यों हो,
    कहो न कोई मन की बात !

कुहरा बरस रहा चुपचाप
अतिशय उतरा नभ का ताप
व्योम-धरा का मौन मिलाप
    ऐसे लमहों में पास रहो,
    थर-थर काँपेगा हिम गात !

नीरवता का मात्र प्रसार
तरुदल हिलते खेतों पार
जब-तब बज उठते हैं द्वार
    खोल गवाक्ष न झाँको बाहर,
    मादक पवन लगाये घात !

●

(24) निष्कर्ष

ज़िन्दगी में प्यार से सुन्दर
कहीं
कुभी भी नहीं !
कुछ भी नहीं !

जन्म यदि वरदान है तो
इसलिए ही, इसलिए !

मोह से मोहक सुगंधित
प्राण हैं तो इसलिए !

ज़िन्दगी में प्यार से सुखकर
कहीं
कुछ भी नहीं !
कुछ भी नहीं !

प्यार है तो ज़िन्दगी महका
हुआ इक फूल है !
अन्यथा; हर क्षण, हृदय में
तीव्र चुभता शूल है !

ज़िन्दगी में प्यार से दुष्कर
कहीं
कुछ भी नहीं !
कुछ भी नहीं !

●

(25) तुम....

जब - जब
मुसकुराती हो
बहुत भाती हो !
तुम
हर बात पर क्यों
मुसकुराती हो !

जब - जब
सामने जा स्वच्छ दर्पण के
सुमुखि !
शृंगार करती हो,

धनुषाकार भौंहों - मध्य
केशों से अनावृत भाल पर
नव चाँद की
बिन्दी लगाती हो,
स्वयं में भूल
फूली ना समाती हो
बहुत भाती हो !

नगर से दूर जा कर
फिर
नदी की धार में
मोहक किसी की याद में
दीपक बहाती हो
बहुत भाती हो !
मुग्धा लाजवंती तुम
बहुत भाती हो !
जब बार - बार
मधुर स्वरों से
मर्म-भेदी
चिर-सनातन प्यार का
मधु - गीत गाती हो
पूजा - गीत गाती हो
बहुत भाती हो !

●

(26) प्रतीक

अर्द्ध-खिले फूलों का
सह-बंधन
तुम
मेरे कमरे में रख
जाने कब
चली गयीं !

जैसे
चमकाता किरणें
कई-कई
अन-अनुभूत अछूते
भावों का दर्पण
तुम
मेरे कमरे में रख
जाने कब,

अपने हाथों
छली गयीं !

जीवन का अर्थ
अरे
सहसा बदल गया,
गहरे-गहरे गिरता
जैसे कोई सँभल गया
भर राग उमंगें
नयी-नयी !
भर तीव्र तरंगें
नयी-नयी !

●

(27) तुम...

गौरैया हो
मेरे आँगन की
उड़ जाओगी !

आज
मधुर कलरव से
गूँज रहा घर,
बरस रहा

दिशि - दिशि
प्यार - भरा
रस - गागर,
डर है
जाने कब
जा दूर बिछुड़ जाओगी !

जब - तक
रहना है साथ
रहे हाथों में हाथ,
सुख - दुख के
साथी बन कर
जी लें दिन दो - चार,
परस्पर भर - भर प्यार,
मेरे जीवन - पथ की पगडंडी हो
जाने कब और कहाँ
मुड़ जाओगी !

●

(28) सुख-बोध

बड़ी प्रतीक्षा के बाद खिले हैं
गमले में फूल,
पीले - पीले पुलकित फूल
झबरीले गेंदे के
टटके फूल !

बड़ी प्रतीक्षा के बाद खिले हैं
जीवन में फूल,
कोमल - कोमल गद्गद् फूल,
मादन - मन भावों के
मादक फूल !
बड़े दिनों के बाद

मिले हैं
सावन - भादों के उपहार,
बड़े दिनों के बाद
सजे हैं
दरवाज़ों पर बंदनवार !

●

(29) उपकृत

इन फूलों ने
मेरे घर - आँगन में
ख़ुशबू भर दी है,
एकाकी बोझिल
जीवन की
सारी तनहाई
हर ली है !
इन फूलों को
खिलने दो,
डालों पर
हिलने दो !

मेरे जर्जर तन से
ऊसर मन से
भावाकुल
मिलने दो !

इन फूलों ने
जग के आँगन को
महकाया है,
रंग - बिरंगी आभा से
लहकाया है !

इन फूलों को

खिलने दो,
डालों के झूलों पर
हिलने दो !

दुनिया-भर के लोगों से
हँस-हँस मिलने दो,
लिपट-लिपट कर
मिलने दो !

इन फूलों ने
भयकर धरती
मनहर कर दी है,
हाँ, हाँ.....
नाना प्रेम-प्रसंगों से
भर दी है !

इन फूलों को
पर्वत - पर्वत
खिलने दो,
मरुथल - मरुथल
खिलने दो,
जंगल - जंगल
खिलने दो,
बस्ती - बस्ती
खिलने दो,
घर - घर
दर - दर
खिलने दो !

●

(30) उत्सव

फूलो !
रंग - बिरंगे फूलो !

गमले - गमले फूलो
क्यारी - क्यारी फूलो
आनन्द - मगन हो फूलो !

फूलो !
रंग - बिरंगे फूलो !
डालों - डालों झूलो
भर - भर पेंगें झूलो
मंद हवा में झूलो !

फूलो !
रंग - बिरंगे फूलो !
नव कलियों को छू लो
पत्ती - पत्ती छू लो
हारित चुनरी छू लो !

⬣

(31) असंगत

निर्जन जंगल में
खिलते-झरते फूलों का,
शूलों की शय्या पर
मूक विकल घायल फूलों का
हार्दिक स्वागत !

रंग - बिरंगे रस - वर्षी
रक्तिम फूलों का
उल्लास - भरा / उत्साह - भरा

मन - भावन स्वागत !

ऊबड़ - खाबड़
बाधक
कंटकमय पथ पर
राहत देते फूलों का
अन्तरतम से हार्दिक स्वागत !

लेकिन; केवल
पग - पग चुभते शूलों का अनुभव,
दूर - दूर तक बजता
खड़खड़ कर्कश उनका रव
करता तन आहत,
मन आहत !
हे स्रष्टा !
एकांगी जीवन की रचना से
बचना !

⬣

(32) एकाकी

भव्य भवनों से भरे
रौशनी में तैरते
सौन्दर्य के प्रतिबिम्ब
इस नगर में
कौन है परिचित तुम्हारा ?
कौन परिचित है ?

जिससे सहज बोलें
मिलें जब-तब.....
हृदय के भेद खोलें !
जिसे समझें
आत्मीय.....विश्वसनीय !

निःसंकोच जिसको
लिखें प्रिय-पत्र,
या दूरवाणी से करें सम्पर्क,

जिसके द्वार पर जा
दें अधिकार से दस्तक
पुकारें नाम !

ऐसा कौन है
परिचित तुम्हारा ?
अजनबी हैं सब,
अपरिचित हैं,
इतने बड़े-फैले नगर में !
कोई-कहीं
आता नहीं अपना
नज़र में !

(33) अकेला

अब तो, अरे
कोई याद तक करता नहीं,
आता नहीं !

मृत्यु के आगोश में
ज़िन्दगी खामोश है
अब तो, अरे
कोई गीत
मन रचता नहीं,
गाता नहीं !
वाद्य चुप हैं
कोई स्वर

न बजता है / उभरता है !

जो वे
बीच पथ में खो गये,
जो हैं
थके - हारे / ऊब - मारे
सो गये !
किसको बुलाएँ,
किसको जगाएँ ?
दुनिया अपरिचित हो गयी,
हम बिराने हो गये !

किसके पास जाएँ,
किसे अपना बनाएँ ?
लीन हैं सब
स्वयं में,
अपने हर्ष में
ग़म में !
नहीं कोई रहा अब संग,
ज़िन्दगी बेरंग !

(34) पटाक्षेप

हो गयी शाम !

कोई नहीं आयगा,
भूल जाओ
सभी नाम !
हो गयी शाम !

मत करो रोशनी
अँधेरा भला है,

देख लूँ स्वप्न
हर बार जिसने
छला है !
विवश मूक मन में
पला है !

नहीं शेष
कोई काम !
हो गयी शाम !
सो लूँ
सरे-शाम,
अविराम!
आयाम.....
आयाम!

(35) विस्मय

कौन छीन ले गया हँसी फूलों की ?
कौन दे गया अरे, फ़सल शूलों की ?
कौन आह! फिर-फिर कलपाता, निर्दय
याद दिला कर, चिर-विस्मृत भूलों की ?

(36) मर्माहत

मुँह कड़वा है
घूँटें कैसे भरें ?

जीना लाचारी है
मन बेहद भारी है !
छद्म हँसी से
स्वागत कैसे करें ?

उजड़ा सूखा उपवन
नीरस नीरव जीवन
फूल कहाँ अब ?
पीले पत्ते झरें !

(37) खंडित मन

विश्वास
टूटता है जब
हिल उठती है धरती
अन्तर की,
अन्दर-ही-अन्दर
अपार रक्त-ज्वार बहता है !

लेकिन
व्यक्ति मौन रह
कुटिल - नियति के
संहारक प्रहार सहता है,
मूक अर्द्ध-मृत
अंगारों की शैया पर
पल-पल दहता है !

चीत्कारों और कराहों की
पृष्ठभूमि पर
मर - मर जीता है,
अट्टहास भर - भर
काल-कूट पीता है !

विश्वास टूटता है जब,
साथ छूटता है जब !

(38) संन्यास - चेतना

अपनों का
कुटिल विश्वासघाती खेल
जब झेल लेता है
सरल विश्वास-धर्मी आदमी,
तब.....
एकांत में
रोता-तड़पता है,
दुर्भाग्य पर
रह-रह कलपता है !

किन्तु;
हत्या नहीं करता,
आत्म-हंता भी नहीं बनता;
अकेला
मानसिक नरकाग्नि में
खामोश जलता है,
स्वयं को दे असंगत सांत्वना
फिर-फिर भुलावे में भटकता है,
यों ही स्वयं को
बारम्बार छलता है !

उसे बुज़दिल नहीं समझो
जानता है वह
कुछ हासिल नहीं होगा
किसी को कोसने से।
भागना क्या
भोगने से !

(39) संबंध

विश्वास का जब दुर्ग
ढ्हता है
आदमी लाचार हो
गहनतम वेदना....
मूक सहता है !

तैयार होता है
निरर्थक ज़िन्दगी
जीने के लिए,
प्रति-दिन
कड़वी घूँट पीने के लिए !

जीवन-शेष दहता है !
विश्वास का जब दुर्ग
ढहता है !

या फिर
आत्म-हंता बन
शून्य में ख़मोश बहता है !
विसर्जित कर अस्तित्व
चुपचाप कहता है

किसी का भी
अरे, विश्वास मत तोड़ो,
विश्वास बंधन है,
विश्वास जीवन है !

(40) सहवर्ती

वेदना-धर्मी तरंगो !
और कितना
और कब-तक
गुदगुदाओगी मुझे ?

कितना और
कब-तक और
बेसाख़्ता
हँसाओगी मुझे ?

भुज-बन्ध में भर
और कितनी देर तक
और कितनी दूर तक
अनुरक्त सहयोगी
बनाओगी मुझे ?

ओ वेदना-धर्मी तरंगो !
क्रूर
आहत-चेतना-कर्मी तरंगो !

(41) वेदना

जीवन
निष्फल जाता
सह लेता,
जब-तब
शोकाकुल स्वर से
कविता कह लेता !
लेकिन
रिसते घावों का

पीड़क अनुभव सहना,
जीवन-भर
तीव्र दहकती भट्टी में
पल-पल दहना
संहारक है
निर्मम हत्या-कारक है !

यह तो
सारा सागर गँदला है,
जाने
कितने-कितने जन्मों का
बदला है !

(42) अंतिम अनुरोध

निर्धन
बेहद निर्धन हूँ,
जाते-जाते
मुझको भी
जीने को
कुछ दे दो !

जो सचमुच
मेरा अपना हो
सुखदायी
मीठा सपना हो !

प्यासा
बेहद प्यासा हूँ,
जाते-जाते
मुझको भी

पीने को
कुछ दे दो !

निर्मल गंगा-जल हो,
झरता मधु-स्रव कल हो !

यों तो
अंतिम क्षण तक
तपना ही तपना है,
यात्रा-पथ पर
छाया तिमिर घना है !

एकाकी
जीवन अभिशप्त बना,
हँसना-रोना सख़्त मना !

●

(43) सलाह

बहुत थके हो तन
हारे अशक्त मन
सो लो !

गुज़री ज़िन्दगी
अजब दुशवार में,
तेज़ चक्रवातों बीच
गूँजते हाहाकार में !

दुखी व्यथित मन,
गहर चोट खाये तन !
खो
याददाश्त,
तनिक स्वस्थ

हो लो !
बहुत थके हो
सो लो !

●

(44) दम्भ

मुझे :
छत दी / सुरक्षा दी
प्रतिष्ठा दी
एक प्यारा नाम
रिश्ते का दिया
क्या इसलिए
यह कथन चरितार्थ हो
'नफ़रत करो :
पाप-कारक कर्म से ;
पाप-चारी से नहीं ?'

पाप क्या है ?
पुण्य क्या है ?
सत्य क्या है ?

●

(45) अभिप्रेत-वंचित

जब
वांछित / काम्य / अभीप्सित
नहीं मिला,
जीने का क्या अर्थ रहा ?

कोसों फैले
लह-लह लहराते उपवन में
जब
हृदय-समायी : मन भायी

गंध-भरा
पुलकित पाटल नही खिला ;
जीवन-भर का तप व्यर्थ रहा !
जीने का क्या अर्थ रहा !

जब अन्तर-तम में
हर क्षण, हर पल
केवल मर्मान्तक त्रास सहा !

मना
बहुमूल्य अनेकों उपहार मिले
हीरों के हार मिले,
अनगिनत सफलताओं पर
असंख्य कंठों से
नभ-भेदी जय-जयकार मिले,
सर्वोच्च शिखर सम्मान मिले,
पग-पग पर वरदान मिले !

किन्तु;
नहीं पाया मन-चाहा
लगता है :
दुर्लभ जीवन निष्कर्म गया,
जैसे भंग हुई
लगभग साधित-कठिन तपस्या !

दहका दाह अभावों का,
हर सपना भस्म हुआ !
निर्धन, निष्फल, भिक्षु अकिंचन
जैसे नहीं किसी की लगी दुआ !

(46) अप्रभावित

क्यों
जी लिया जीवन अकेले,
शेष भी
चुपचाप जी लेंगे !

विष-जल पी लिया
दिन.... रात
बेबस,
मृत्यु की उत्सुक प्रतीक्षा में !
भविष्य विनाश वीक्षा में !

विषज हर द्रव्य
हँस कर
शेष जीवन-हेतु
अपने-आप पी लेंगे !

मत करो चिन्ता -
निवासी विष-निलय का मैं,
महा शिवतीर्थ हूँ
अपने समय का मैं !

(47) आत्म-निरीक्षण

जीवन भर
कुछ भी
अच्छा नहीं किया !
ऐसे तो
जी लेते हैं सब,
कुछ भी लोकोत्तर
जीवन नहीं जिया !

अपने में ही
रहा रमा,
हे सृष्टा !
करना सदय क्षमा !

●

(48) वास्तविकता

सँभलते - सँभलते...
समय तीव्र गति से गुज़रता गया !
सब व्यवस्थित बिखरता गया !
हस्तगत था अरे जो
अचानक फिसलता गया ....
हर क़दम पर
सँभलते-सँभलते !

हर तार टूटा
सँवरते-सँवरते
कि फिरफिर उलझता गया !
बंध हर और कसता गया ;
सूत्र क्रमशः सुलझते-सुलझते
उलझता गया,
हर क़दम पर
सँवरते-सँवरते !

ज़िन्दगी कट गयी ज़िन्दगी
सीखते-सीखते,
खो गये कंठ-स्वर
चीखते-चीखते,
शास्त्र संगीत का
सीखते-सीखते !

●

(49) विराम - पूर्व : 1

स्मृतियाँ फूल हैं !
रंग-बिरंगे
खिलखिलाते फूल हैं !

स्मृतियाँ
जागती हैं जब
लगता है कि मानों
सज गये हर द्वार बंदनवार
चारों ओर !
जीवन महकता है
सुगन्धों से,
जीवन छलकता है
मधुर मादन रसों से,
जीवन जगमगाता है
चटक नवजात रंगों से !
आदमी
ऐसे क्षणों में डूब जाता
स्वप्न के मधु लोक में
सुध-बुध भूल !

दीखता सर्वत्र
अनुकूल-ही-अनुकूल,
जैसे डालियों पर
झूलते हों फूल !

झूमते हों
प्रिय अनुभूतियों के फूल !

●

(50) विराम - पूर्व : 2

स्मृतियाँशूल हैं !
धँसते नुकीले शूल हैं !

स्मृतियाँ
जागती हैं जब
लगता है कि मानों
उड़ रही है धूल चारों ओर,
जीवन दहकता
कष्टकर नरकाग्नि में,
जीवन लड़खड़ाता चीखता
सुनसान में,
भर हत हृदय में हूल !
आदमी
ऐसे क्षणों में टूट गिरता
तिमिरमय घन गुहा में
हिल उखड़ आमूल !
दीखता सर्वत्र
प्रतिकूल-ही-प्रतिकूल,
भेदते अन्तःकरण को
तीव्र चुभते शूल !
अनइच्छित
दुखद अनुभूतियों के शूल ।

●

(51) बोध

अद्‌भुत
कश-म-कश में
दिन.... हफ़्ते... महीने....वर्ष
गुज़रते जा रहे,
विस्मय !

नहीं वश में
अरे, कुछ भी नहीं वश में,
'विवशता'
अर्थ :
जीवन तो नहीं ?

एक दिन
यों ही अचानक
हो जाएगा लय
सब !
कहीं क्या दीखती है
विभाजक-रेख ?
फिर क्या कहा जाए
सार्थक / व्यर्थ ?

अस्तित्व
लुप्त होने के लिए,
जन्म-जागृति
सुप्त होने के लिए,
फिर,
यह कश-म-कश किसलिए ?

गुज़रने दो
रात दिन / दिन रात
पल-क्षण,
काल-क्रम अविरत,
विषम-सम !

●

(52) सच है

ज़िन्दगी शुरू हुई
कि अन्त आ गया !
अभी-अभी हुई सुबह
कि अंधकार छा गया !

आसमान में
सतत बिखर-बिखर
किरण-किरण
विलीन हो गयी
कि दूर-दूर तक
प्रखर प्रकाश की
अजस्र धार खो गयी ?

यहाँ-वहाँ सभी जगह
अपार शोर था,
व्योम के हरेक छोर तक
लाल-लाल भोर था,
राग था,
गीत था,
प्यार था,
मीत था,
विलुप्त सब !

रुको ज़रा
प्रकाश आयगा,
प्रकाश का प्रवाह आयगा !
नया विहान छायगा !

(53) स्वागत : 21वीं शती का

आगामी सौ वर्षों में
वि-ज्ञान सूर्य की
अभिनव किरणों से
आलोकित हो
मानव-मन !

अंधे विश्वासों से
अंधी आस्था से
ऊपर उठ कर,
मिथ्या जड़ आदिम
तथाकथित धर्मों की
कट्टरता से
हो कर मुक्त
नयी मानवता का
सच्चा पूजक हो
जन-जन !

एक अभीप्सित
व्यापक विश्व-धर्म में
दीक्षित हो
पूर्ण लोक,
फेंके उतार
गतानुगत खोखले विचारों का
सड़ा-गला निर्मोक !
क्षयी विगलित
कुष्ठ-कोष आवरण कवच,
जिससे दीखे केवल
सच...सच !

आगामी सौ वर्षों में

स्थापित हो साम्राज्य
दया ममता करुणा का,
फैले
अभिमंत्रित संस्कृत शीतल
जल वरुणा का

बीभत्स घृणा-दर्शन
हिंसा से,
आहत मानव मन पर
तन पर !

वसुधा
आप्लावित हो
उन्नत भावोंसद्‌भावों से,
आच्छादित हो
मर्यादित न्यायोचित प्रस्तावों से !
हो लुप्त जगत से
बर्बरता
क्रूर दनुजता
ध्वंसक वैर विकलता,
सम्र
देव सहिष्णु बनें,
पालनकर्ता विष्णु बनें !

(54) अभिनन्दित - क्षण

शुभ-संकल्पों की
फहराती
कल्याण-पताका
सौभाग्य-पताका,
आयी पृथ्वी पर
नयी शती

इक्कीसवीं शती !

उड़ती
अति-सुन्दर
स्वर्ग-वधू-सम
श्वेताम्बर लहराती,
नवयुग-मंडप में
स्थापित करती
शान्ति-कलश सुख,
स्वस्ति मुख ।
आयी पृथ्वी पर
नयी शती
इक्कीसवीं शती !

मानव के
चिर-इच्छित सपनों को
धरती पर
करने साकार,
देने
उसकी सर्वोत्तम रचना को
दृढ़ आधार,
उतरी
जन-मानस पर
नयी शती
इक्कीसवीं शती !
स्वागत !
श्रम-रत
हम
करते हार्दिक स्वागत !

(55) विजयोल्लास

हमने चाहा
जी लें जब-तक आये
नयी शती !
हमने चाहा
धड़कन बंद न हो
जब-तक आये
हँसती-गाती
नयी शती !
पूरी होती
इस इच्छा पर
कौतूहल है,
मानव-आस्था में
सच;
कितना बल है !
अद्‌भुत बल है !
हमने चाहा
जी लें जब-तक आये
नयी शती !
आख़िर आ ही गयी
थिरकती नयी शती ।
सचमुच
आ ही गयी
ठुमकती नयी शती !
मृत्यु पराजित
जीवन जीत गया !
सफल तपस्या,
पहनूंगा अब
सुविधा से परिधान नया !

17

मृत्यु-बोध : जीवन-बोध

रचना-काल सन् 2000-2001
प्रकाशन सन् 2002

कविताएँ

1 आभार
2 आभार; पुनः
3 काल-चक्र
4 निरुद्विग्न
5 चिन्तन
6 पहेली
7 सचाई
8 मृत्यु-रूप
9 निष्कर्ष
10 जन्म-मृत्यु
11 युग्म
12 विलोम
13 समान
14 साखी
15 कामना
16 वास्तव
17 जीवन-दर्शन
18 चरैवेति
19 प्रयोगरत
20 सार्थकता
21 प्रार्थना
22 मृग-तृषा
23 संकल्प
24 जयघोष
25 आह्वान
26 एक दिन
27 उद्देश्य
28 अभीष्ट
29 मन-वांछित
30 सिद्ध
31 स्वस्थ-दृष्टि
32 साम्य
33 दहशतअंगेज़
34 मृत्यु-दर्शन
35 आमंत्रण
36 मृत्यु-परी से
37 निवेदन
38 मृत्यु-विधि

39 तुलना
40 अन्तर
41 अंत
42 आघात
43 सत्य
44 घोषणा
45 नमन
46 अलविदा
47 निश्चिति
48 तपस्वी
49 मृत्यु-पत्र
50 कृतकर्मा

(1) आभार

मृत्यु है;
मृत्यु निश्चित है,
अटल है
जीवन इसलिए ही तो
इतना काम्य है !
इसलिए ही तो
जीवन-मरण में
इतना परस्पर साम्य है !
मृत्यु ने ही
जीवन को दिया सौन्दर्य
इतना
अशेष - अपार !
मृत्यु ने ही
मानव को दिया
जीवन-कला-सौकर्य
इतना
सिँगार-निखार !
निःसंदेह
है स्वीकार्य
नश्वरता,
मर्त्य दर्शन / भाव
प्रतिपल मृत्यु-तनाव !
आभार
मृत्यु के प्रति
प्राण का आभार !

⬣

(2) आभार; पुनः

मौत ने ज़िन्दगी को बड़ा ख़ूबसूरत बना दिया,
लोक को, असलियत में सुखद एक जन्नत बना दिया,
अर्थ हम प्यार का जान पाये, तभी तो सही-सही,
आदमी को अमर देव से; और उन्नत बना दिया !

⬣

(3) काल-चक्र

निर्मम है
काल-चक्र
अतिशय निर्मम !
जिसके नीचे
जड़-जंगम
क्रमशः पिसता और बदलता
हर क्षण, हर पल !
थर-थर कँपता भू-मंडल !

अदृश्य
निःशब्द किये
अविरत घूम रहा
यह काल-चक्र
निर्विघ्न ... निर्विकार !

इसके सम्मुख
स्थिरता का कोई
अस्तित्व नहीं,
इसकी गति से
सतत नियन्त्रित
जीवन और मरण,
धरती और गगन !

⬣

(4) निरुद्विग्न

मृत्यु से डरते रहेंगे
तो
हो जायगा
जीना निरर्थक !
भार बोझिल
शुष्क नीरस
निर्विषय मानस।

अतः

सार्थक तभी
	जीवन,
मरण-डर मुक्त हो
	हर क्षण।

अशुभ है
नाम लेना
मृत्यु-भय का,
या प्रलय का
	इसी कारण।

●

(5) चिन्तन

मृत्यु ?
एक प्रश्न-चिन्ह !

भेद जानना
दुरूह ही नहीं;
मनुष्य के लिए
अ-ज्ञात
सब।
देह पंच-तत्त्व में विलीन
सब बिखर-बिखर !
	समाप्त।

प्राण लौटना नहीं;
न सम्भवी
पुनः सचेत कर सकें,
रहस्य ज्ञात कर सकें
स्वयं जब नहीं।

मरण - प्रहेलिका
अजब प्रहेलिका !
अबूझ आज तक
गज़ब प्रहेलिका !

प्रयत्न व्यर्थ
मृत्यु-अर्थ व्यक्त हो सके;
जटिल कठिन
	विचारणा।

●

(6) पहेली

क्या कहा ?
तन
रहने योग्य नहीं रहा;

इसलिए ...
आत्मन !
तुम चले गये।

नये की चाह में
किसी राह में;

कहाँ ?
लेकिन कहाँ ??

अज्ञात है,
सब अज्ञात है !
घुप अँधेरी रात है,
रहस्यपूर्ण
हर बात है !

प्रश्न किसका है ?
उत्तर किसका है ?

●

(7) सचाई

मृत्यु नहीं होती
तो ईश्वर का भी अस्तित्व नहीं होता,
कभी नहीं करता
मानव

प्रारब्धवाद से समझौता !

ईश्वर प्रतीक है
ईश्वर प्रमाण है
मानव की लाचारी का,
मृत्यूपरान्त तैयारी का।

स्वर्ग-नरक का
सारा दर्शन-चिन्तन
कल्पित है,
मानव
मृत्यु-दूत की आहट से
हर क्षण आतंकित है,
रह-रह रोमांचित है !
मालूम है उसे
'मृत्यु सुनिश्चित है !'
इसीलिए पग-पग पर
आशंकित है !
यही नहीं
तथाकथित मर्त्यलोक से
नितान्त अपरिचित है;
वह।
अतः तभी तो
जाता है
ईश्वर की शरण में
पाने चिर-शान्ति मरण में !

अतः तभी तो
गाता है
एक-मात्र
'राम नाम सत्य है !'
अरे, जन्म-मृत्यु कुछ नहीं
उसी का
विनोद-क्रूर कृत्य है !

(8) मृत्यु-रूप

मृत्यु प्राकृतिक हो
या आकस्मिक दुर्घटना हो
निष्कर्ष एक है
अन्त-कर्म जीवन का,
होना चेतनहीन
सक्रिय तन का,
सदा-सदा को होना सुप्त
हृदय-स्पन्दन का !
दोनों ही तथाकथित
विधि-लेख हैं,
भाग्य-लिपि अदृष्ट अमिट रेख हैं !
लेकिन
जीवन-वध
चाहे आत्म-हनन हो,
या हत्या-भाव-वहन हो,
या व्यक्ति और समाज रक्षा हेतु
दरिन्दों का दमन-दलन हो,
नहीं मरण;
है प्राण-हरण।
भले ही अंत एक
मृत्यु !
सही मृत्यु या अकाल मृत्यु।

(9) निष्कर्ष

मृत्यु ?
प्रश्न-चिन्ह।

स्थिर
अनुत्तरित
अड़ा,
विरुद्ध बन
खड़ा।

पर, नहीं
मनुष्य हार मानना,
तनिक न ईश कल्पना
बचाव में,
सवाल के जवाब में,
नहीं, नहीं !
रहस्य मृत्यु का
निरावरण ... प्रकट
अवश्य
अवश्य
एक दिन !

●

(10) जन्म-मृत्यु

मृत्यु :
जन्म से बँधी
अटूट डोर है,

जन्म :
एक ओर;
मृत्यु :
दूसरा प्रतीप छोर है !

जन्म - एक तट
मरण - विलोम तीर;

जन्म :
हर्ष क्यों ?
मृत्यु :
पीर क्यों ?
जन्म-मृत्यु
जब समान ?

एक / रूपवान;
दूसरा / महानिधान !

जन्म
सूत्रपात है,
मृत्यु
नाश है : निघात है !

जन्म ... ज्ञात,
मृत्यु ... अ-ज्ञात !

जन्म : आदि,
मृत्यु : अन्त है !
जन्म : श्रीगणेश,
मृत्यु : क्षिति दिगन्त है !

जन्म : हाँ, हयात है,
मृत्यु : हा! विघात है !

जन्म : नव-प्रभात है,
मृत्यु : घोर रात है !

●

(11) युग्म

चारों ओर फैली
मरुभूमि रेतीली
बुझते दीपक लौ-सी
भूरी
पिंगल।
पीत-हरित
जल-रहित
ढलती उम्र
मरणासन्न !

लेकिन
अनगिनती
लहराते ... हरिआते
मरुद्वीप !
कँटीले

पत्ते रहित
पनपते पेड़
जीवन-चिन्ह
पताकाएँ !

जलाशय
आशय ... जीवन-द
प्राणद !

⬣

(12) विलोम

जीवन : हर्षोल्लास
मृत्यु : अंतिम निश्वास
मधुर राग / चीत्कार !
शुभ-कृत / हाहाकार !

⬣

(13) समान

प्रात भी अरुण
सान्ध्य भी अरुण
प्रात-सान्ध्य एक हैं।

जन्म पर रुदन
मृत्यु पर रुदन
जन्म-मृत्यु एक हैं।

यही
सही विवेक है,
यथार्थ ज्ञान है,
व्यर्थ
और ... और ध्यान है।

⬣

(14) साखी

इतने उदास क्यों होते हो ?
होशोहवास क्यों खोते हो ?
जीवन - बहुमूल्य है; सही
है अटल मृत्यु; क्यों रोते हो ?

⬣

(15) कामना

जिएँ समस्त शिशु तरुण
अकाल मृत्यु है करुण।

⬣

(16) वास्तव

"मृत्यु
जन्म है पुनः - पुनः
आत्म - तत्त्व का।"
असत्य;
इस विचार को
कि सत्य मान लें ?
अंध मान्यता
तर्क हीन मान्यता !

प्राण / पंच - तत्त्व में विलीन,
अंत / एक सृष्टि का,
अंत / एक व्यक्ति का,
एक जीव का।

कहीं नहीं
यहाँ ... वहाँ।
सही यही
कि लय सदैव को।

न है नरक कहीं,
न स्वर्ग है कहीं,
यथार्थ लोक सत्य है।

मृत्यु सत्य है,
जन्म सत्य है।

●

(17) जीवन-दर्शन

बहिर्गति
भौतिक स्पन्दन;
अन्तर-गति
जीवन।

जीवन गति का वाहक
मैं
सतत नियन्त्रक
मैं
जब - तक
गतिशील रहेगा जीवन
इतिहास रचेगा
मानव-मन
मानव-तन।

लय हो न कभी;
जीवन लयवान रहे,
कण-कण गतिमान रहे।

लयगत होना
अन्तर गति खोना।

●

(18) चरैवेति

संघर्षों-संग्रामों से
जीवन की निर्मिति,
होना निष्क्रिय
ज्ञापक - आसन्न मरण का,
थमना जीवन की परिणति।
जीवन : केवल गति,
अविरति गति !

क्रमशः विकसित होना,
होना परिवर्तित
जीवन का धारण है !
स्थिरता
प्राण-विहीनों का
स्थापित लक्षण है !

जीवन में कम्पन है, स्पन्दन है,
जीवन्त उरों में अविरल धड़कन है !

रुकना
अस्तित्व - विनाशक
अशुभ मृत्यु को आमंत्रण,
चलते रहना ... चलते रहना !
एक मात्र मूल-मंत्र
साधक जीवन !

●

(19) प्रयोगरत

आदमी में
चाह जीवन की
सनातन और सर्वाधिक प्रबल है;

जब कि
हर जीवन्त की
अन्तिम सचाई
मृत्यु है !
हाँ, अन्त निश्चित है,
अटल है !

लेकिन / सत्य है यह भी
अमरता की : अजरता की
लहकती वासना का वेग
होगा कम नहीं,
अद्‌भुत पराक्रम आदमी का
चाहता कलरव,

रुदन मातम नहीं !
हर बार
ध्रुव मृति की चुनौती से
निरन्तर जूझना स्वीकार !
मृत्युंजय
बनेगा वह; बनेगा वह !

●

(20) सार्थकता

जीना-भर
जीवन-सार्थकता का
नहीं प्रमाण,
जीना -
मात्र विवशता
जैसे - मृत्यु ..... प्रयाण।

जो स्वाभाविक
उसके धारण में
कोई वैशिष्ट्य नहीं,
संज्ञा
प्राणी होना मात्र
मनुष्य नहीं।

मानव - महिमा का
उद्‌घोष तभी,
मन में हो
सच्चा तोष तभी
जब हम जीवन को
अभिनव अर्थ प्रदान करें,
भरे अँधेरे में
नव - नव ज्योतिर्लोकों का
संधान करें।

सृष्टि-रहस्यों को ज्ञात करें,
चाँद-सितारों से बात करें।
परमार्थ

हमारे जीने का लक्ष्य बने,
हर भौतिक संकट
पग-पग पर भक्ष्य बने।

इतनी क्षमताएँ
अर्जित हों,
फिर,
प्राण भले ही
मृत्यु समर्पित हों,

कोई ग्लानि नहीं,
कोई खेद नहीं,
इसमें
किंचित मतभेद नहीं,

जीवन सफल यही
जीवन विरल यही
धन्य मही !

●

(21) प्रार्थना

वांछित
अमरता नहीं;
चाहता हूँ
अजरता।
सकल स्वास्थ्य, आरोग्य
निरुद्विग्नता
तन और मन की।

अभिप्रेत वरदान यह
कल्पित किसी ईश से
नहीं।

स्व-साधित सतत साधना से
आराधना से नहीं।
तन क्लेश-मुक्त

मन क्लेश-मुक्त

हाँ,
एक-सौ-और-पच्चीस वर्षो
जिएँ हम!
अपने लिए,
दूसरों के लिए।

●

(22) मृग - तृषा

उच्छृंखल और महत्त्वाकांक्षी
मानव
धन के पीछे भाग रहा है
सुख के पीछे भाग रहा है
जीवन की क़ीमत पर।
आश्चर्य अरे
इस अद्‌भुत दूषित नीयत पर !

जीवन है तो / धन-योग बनेगा,
जीवन है तो / सुख-भोग सधेगा !

खंडित और विशृंखल जीवन
रोग-ग्रस्त / हत घायल जीवन
क्षण-भंगुर
मृत्यु-कुण्ड में
गिरने को आतुर !

अंधा, संभ्रम, अज्ञानी
मानव
धन ही वर्चस्व समझ रहा है
सुख को सर्वस्व समझ रहा है !

बहुमूल्य मिला जो जीवन / धो बैठेगा,
जीवन की नेमत / खो बैठेगा !

●

(23) संकल्प

पूर्ण निष्ठावान
हम,
आश्वस्त हो उतरे
विकट जीवन-मरण के
द्वन्द्व में !
बन सिपाही
अमर जीवन-वाहिनी के,
घिर न पाएंगे
विपक्षी के किसी
छल-छन्द में !

हार जाएँ,
पर, वर्चस्व मानेंगे नहीं
तनिक भी मरण का,
अधिकार अपना
छिनने नहीं देंगे
जीवन वरण का !
जयघोष गूँजेगा
चरम निश्वास तक,
संघर्षरत
बल-प्राण जूझेगा
शेष आस / प्रयास तक !

●

(24) जयघोष

सारा विश्व सोता है
इतनी रात गुज़रे
कौन रोता है ?

सुना है
पास के घर में
मृत्यु का धावा हुआ है,
सत्य है
कोई मुआ है !

यमदूत के
तीखे छुरे ने
आदमी को फिर
छुआ है !

पहुँचो
अमृत-सम्वेदना-लहरें लिए,
यह आदमी
फिर-फिर जिए !
जीवन-दुंदुभी बजती रहे,
क्षण-क्षण भले ही,
अरथियाँ सजती रहें !

●

(25) आह्वान

अलख
जगाने वाले आये हैं,
नव-जीवन का
प्रिय मधु गीत
सुनाने वाले आये हैं !
सोहर गाने वाले आये हैं !
उर-वीणा के तार-तार पर
जीवन-राग
बजाने वाले आये हैं !

मन से हारो !
जागो !
तन के मारो !
जागो !

जीवन के
लहराते सागर में
कूदो
ओ गोताख़ोरो !
जड़ता झकझोरो !

●

(26) एक दिन

जीवन
विजयी होगा
विश्वास करें,
नीच मीच से
न डरें; न डरें !
हर संशय का
नाश-विनाश करें !
जीवन जीतेगा
विश्वास करें !

घनघोर अँधेरा
मौत मरी का
छाएगा / डरपाएगा;
सूरज के बल पर / दम पर
विश्वास करें !

इसका
क़तरा-क़तरा फ़ाश करें !
चारों ओर प्रकाश भरें !
जीवन जीतेगा
विश्वास करें !

●

(27) उद्देश्य

हम
जो जीवन के शिल्पी हैं
केवल जीवन की
बात करें,
जीवन की सार्थकता खोजें,
जीवन - तत्त्वों को
ज्ञात करें !

मरण
हमारा हरण करे तो

उस पर बढ़ कर
आघात करें,
जीवन का
जय - जयकार करें,
यम का
मृति का
संघात करें !

(28) अभीष्ट

जीवन-उपवन में
मृत्यु सर्पिणी का
अस्तित्व न हो,
मृत्यु भीत से आतंकित
मानव-व्यक्तित्व न हो !

हर मानव
भोगे जीवन
संदेह रहित,
हो हर पल उसका
मधुरित सिंचित !

जीवन - धर्मी
जीवन से खेले,
भरपूर जिये जीवन
हर सुख की बाँहें
बाँहों में ले ले !

(29) मन-वांछित

जब-तक
जीना चाहा
हमने;
ख़ूब जिये !
मानों
वर्षा में भी

जलते रहे दिये !

नहीं किसी की
रही कृपा,
जूझे -
अपने बल पर
विश्वास किये !

(30) सिद्ध

जिजीविषु
नहीं करेगा
मृत्यु-प्रतीक्षा !
सोना
सच्चा खरा तपा
क्यों देगा
अग्नि-परीक्षा ?

भ्रम तोड़ो,
काल-चक्र को मोड़ो !
जीवन से नाता जोड़ो !
जड़ता छोड़ो !

(31) स्वस्थ दृष्टि

स्वयं को
शाश्वत समझ कर
जीते हैं,
निश्चिन्त
हँसते और गाते हैं,
बेफ़िक्र
खाते और पीते हैं;
जीना
क्या इसे ही
हम कहें ?

अंत से
जब रू-ब-रू हों,
अन्यथा
अनभिज्ञ ही उससे रहें,
क्या
जीना इसे ही
हम कहें ?

(32) साम्य

गाता हूँ
विजय के गीत
गाता हूँ !
मृत्यु पर
जीवन जगत की जीत
गाता हूँ !
अति प्रिय वस्तु
जीवन-विस्फुरण की
बेधड़क जयकार
गाता हूँ !

क़ब्रिस्तान के आकाश में
जो गूँजते हैं स्वर
परिन्दों के
स्वच्छन्द रिन्दों के
अनुवाद हैं
मेरी
जीवन-भावनाओं के !
सहचार हैं
मेरी
जीवन-अर्चनाओं के !

(33) दहशतअंगेज़

सावधान !
फहरा दी है
हमने
घर-घर, गाँव-गाँव, नगर-नगर
जीवन की
नव-जीवन की
लाल पताकाएँ !

बस्ती-बस्ती, चौराहों-सतराहों पर,
यहाँ-वहाँ -
ठाँव-ठाँव !
लहरा दी हैं
रक्त-पताकाएँ !

अब नहीं चलेगा
आतंकी, घातक, जन-भक्षी,
मद-ज्वर-ग्रस्त
मरण-राक्षस का
कोई भी दावँ !

तन के भीतर घुस कर
घात लगाता है,
अपने को अविजित यम का
दूत बताता है,
तन के भीतर
विस्फोटक-बारूद
बिछाता है,
और ...
अदृश स्थानों से
छिप-छिप कर
दूरस्थ-नियन्त्रित-यंत्र चलाता है !
देखें
अब और किधर से आता है !

(34) मृत्यु-दर्शन

मृत्यु :
सुनिश्चित है जब;
व्यर्थ इस क़दर
क्यों होते हो
आशंकित,
आतंकित !

मृत्यु से अरे कह दो
'जब चाहे आना; आये।'

इस समयावधि तो
आओ,
मिल कर नाचें-गाएँ !
नाना वाद्य बजाएँ !
तोड़ें मौन;
मृत्यु की चिन्ता
करता है कौन ?

(35) आमंत्रण

मृत्यु
आना,
एक दिन ज़रूर आना !
और मुझे
अपने उड़नखटोले में
बैठा कर ले जाना;
दूर ... बहुत दूर
नरक में !
जिससे मैं
नरक-वासियों को
संगठित कर सकूँ,
उन्हें विद्रोह के लिए
ललकार सकूँ,
ज़िन्दगी बदलने के लिए

तैयार कर सकूँ !
नहीं मानता मैं
किसी चित्रगुप्त को
किसी यमराज को;
चुनौती दूंगा उन्हें !
बस, ज़रा कूद तो जाऊँ
नरक-कुण्ड में !
मिल जाऊँ
नरक-वासियों के
विशाल झुण्ड में !

(36) मृत्यु-परी से

मृत्यु आओ
हम तैयार हैं !
मत समझो
कि लाचार हैं ।

पूर्व-सूचना
दोगी नहीं क्या ?
आभार मेरा
लोगी नहीं क्या ?

आओगी -
बिना आहट किये
आश्चर्य देती !
नटखट बालिका की तरह !

ठीक है,
स्वीकार है !
मेरी चहेती,
तुम्हारा खेल यह
स्वीकार है !

चुपचाप आओ,
मृत्यु आओ

हम तैयार हैं !

अच्छी तरह
समझते हैं
कि जीवन-पुस्तिका का
उपसंहार हो तुम !

इसलिए
मेरे लिए
पूर्णता का
शुभ-समाचार हो तुम !

आओ,
मृत्यु आओ,
हम तैयार हैं !
प्रतीक्षा में तुम्हारी
सज-धज कर
तैयार हैं !

●

(37) निवेदन

मृत्यु
क्या हुआ
यदि तुम स्त्री-लिंग हो,
तुम्हें मित्र बना सकता हूँ !
शरमाती क्यों हो ?

आओ
हमजोली बनो ना !
हमख़ाना नहीं तो
हमसाया बनो ना !

चाँद के टुकड़े जैसी तुम !
सामने वाली खिड़की से
झाँकना,
आँकना !

और एक दिन अचानक
मुझे साथ ले
चल पड़ना
प्रेत-लोक में !
यों ही
नोकझोंक में !

●

(38) मृत्यु-विधि

स्वप्न देखते
आती होगी मृत्यु,
तन से
प्राण चले जाते होंगे
तभी।

स्वप्न देखता रहता आदमी
दिवंगत हो जाता होगा !

वह क्या जाने ?

दुनिया वालों से पूछो
जिन्होंने
तन पर रख
ढक दी है चादर !
क्या हुआ ?
हुआ क्या ?
आख़िर ?

●

(39) तुलना

शिव में
शव में
अन्तर है मात्र इकार का
(तीसरे वर्ण वार का।)

शिव

मंगलकारी है
            सुख झड़ता है !
श्व
अनिष्ट-सूचक
            केवल सड़ता है !

शिव के तीन नेत्र हैं,
शव अंधा है !

कैसा गोरखधंधा है ?

●

(40) अन्तर

आपने याद किया
            आभार !
मीठा दर्द दिया
            स्वीकार !

कितना अद्‌भुत है संयोग
कि अन्तिम विदा
अरे ! ओ प्रेम प्रथम !
आये
ओझल होती राह पर,
लिए चाह
जो कभी पूरी होनी नहीं,
कभी वास्तव स्थूल छुअन से
सह-अनुभूत हमारी
यह दूरी होनी नहीं !

जाता हूँ
याद लिए जाता हूँ,
दर्द लिए जाता हूँ !

●

(41) अन्त

समर
अब कहाँ है ?
सफ़र
अब कहाँ है ?

थम गया सब
बहता उछलता नदी-जल तरल,
जम गया सब
नसों में रुधिर की तरह !

दर्द से
देह की हड्डियाँ सब
चटखती लगातार,
अब कौन
इन्हें दबाए
टूटती आख़िरी साँस तक ?
अँधेरे-अँधेरे घिरे
जब न कोई
पास तक !

लहर अब कहाँ
एक ठहराव है,
ज़िन्दगी अब
शिथिल तार;
बिखराव है !

●

(42) आघात

मैंने ...
जीवित रखा तुम्हें
अतः तुम्हारी
जीवित गलित लाश भी
ढोऊंगा !
मूक विवश ढोऊंगा !

विश्वासों का ख़ून किया
तुमने,
अरमानों को
जलती भट्ठी में भून दिया
तुमने !
छल-छद्म का
सफल अभिनय कर,
जीवन के हर पल में
दर्द असह भर !

प्यारा नहीं बना,
हत्यारा नहीं बना !
अरे ! नहीं छीना जीने का हक़;
यदपि हुआ बेपरदा शक,
हर शक !

जीवित रखा जब
नरकाग्नि में दहूंगा
बन संवेदनहीन
सब सहूंगा !

पहले या फिर
सब को
चिर-निद्रा में सोना है,
मिट्टी-मिट्टी होना है !

ओ बदक़िस्मत !
फिर, कैसा रोना है ?

●

(43) सत्य

प्राण-पखेरू
उड़ जाएंगे,
उड़ जाएंगे !
प्राण-पखेरू
उड़ जाएंगे !

काहे इतना जतन करे,
शाम-सबेरे भजन करे,
तेरे वश में क्या है रे
मन्दिर-मन्दिर नमन करे,

इक दिन तन के पिंजर से
प्राण-पखेरू उड़ जाएंगे !
जो कभी न वापस आएंगे !
उड़ जाएंगे
प्राण-पखेरू
उड़ जाएंगे !

●

(44) निश्चिति

तय है कि
तू
एक दिन
मृत्यु की गोद में
मौन
सो जायगा !

तय है कि
तू
एक दिन
मृत्यु के घोर अँधियार में
डूब
खो जायगा !

तय है कि
तू
एक दिन
त्याग कर रूप श्री
भस्म में सात्
हो जायगा !

●

(45) घोषणा

दुनिया वालों से
कह दो
अब
महेन्द्रभटनागर सोता है !
चिर-निद्रा में सोता है !

जो
होना होता है;
वह होता है !
रे मानव !
तू क्यों रोता है ?
जीवन
          जो अपना है,
उस पर भी
अपना अधिकार नहीं,
घर-धन
          जो अपना है
उसमें भी
सचमुच
कोई सार नहीं !
उसके
तुम दावेदार नहीं !

बन कर
मौन विरक्त - विरागी

चल देते हैं
          छोड़ सभी,
चल देते हैं
नये-पुराने नाते-रिश्ते
          तोड़ सभी !

रे इस क्षण का
अनुभव

सब को करना है,
मृत्यु अटल है
फिर
उससे क्या डरना है ?

ओ, मृत्यु अमर !
तुम समझो चाहे
          लाचार मुझे,
          उपसंहार मुझे,
स्वेच्छा से
करता हूँ अंगीकार तुम्हें
तन-मन से स्वीकार तुम्हें !

सुखदायी
मिट्टी की शैया पर सोता हूँ !
इस मिट्टी के
कण - कण में मिल कर
अपनापन खोता हूँ !
          नव जीवन बोता हूँ !

जैसे जीवन अपनाया
वैसे
हे, मृत्यु
तुम्हें भी अपनाता हूँ !

जाता हूँ,
दुनिया से जाता हूँ !
सुन्दर घर, सुन्दर दुनिया से
जाता हूँ !
सदा ... सदा को
जाता हूँ !

(46) नमन

अलविदा !
जग की बहारो
　　　　अलविदा !
ओ, दमकते चाँद
झिलमिलाते सित सितारो
　　　　अलविदा !
पहाड़ो ... घाटियो
ढालो ... कछारो
　　　　अलविदा !
उफ़नती सिन्धु-धारो
　　　　अलविदा !

फड़फड़ाती
मोह की पाँखो,
छलछलाती
प्यार की आँखो
　　　　अलविदा !

अटूटे बंध की बाँहो
अधूरी छूटती चाहो
　　　　अलविदा !
　　　　अलविदा !

●

(47) अलविदा !

प्रारब्ध के मारे हुए
हम,
ज़िन्दगी के खेल में
　　　　हारे हुए
हम,

हाय !
अपनों से सताए,
हृदय पर चोट खाए,

सिर झुकाए
मौन
जाते हैं सदा को

कभी भी
याद मत करना,
आज के दिन भी
सुनो,
स्मृति-दीप मत रखना !

●

(48) तपस्वी

मृत्यु पर पाने विजय
सिद्धार्थ - साधक
एक और चला !

जिसने हर चरण
यम-वाहिनी की
छल-कुचालों को दला !

किसी भी व्यूह में न फँसा,
मौत पर
अपना कठिन फंदा कसा !

गा रहा है जो
ज़िन्दगी के गीत
मृत्यु-कगार पर,
एक दिन
पा जायगा
　　　　पद अमर
अपना बदल कर रूप !

रखना सुरक्षित
इस धरोहर को
बना कर स्तूप !

●

(49) मृत्यु-पत्र

रोना नहीं,
दीन-निरीह होना नहीं !

आघात सहना,
संयमित रहना।

आडम्बरों से मुक्त
अन्तिम कर्म हो,
ध्यान में बस
पारलौकिक-पारमार्थिक मर्म हो !

मृत्यूपरान्त जगत व जीवन

न जाना किसी ने
न देखा किसी ने ....
निर्धारित व्यवस्थाएँ समस्त
कपोल-कल्पित हैं,
सब अतर्कित हैं।
अनुसरण उनका अवांछित है !
अंधानुयायी रे नहीं बनना,
ज्ञान के आलोक में
हो संस्कार-पूत उपासना।

आदेश यह
सद्धर्म सद्भावना।

(50) कृतकर्मा

दुःख क्यों ?
शरीर-धर्म की पूर्ति पर
दुःख क्यों ?
अंत
चिन्ह पूर्णता,
सफल चरण

दुःख क्यों ?

जीव की समाप्ति
एक क्रम
दुःख क्यों ?

शेष
जीवनी वृतान्त
अर्थ सिद्धि दो,
नाम दो।

आख़िरी सलाम लो !

18

राग-संवेदन

रचना-काल सन् 2003-2004

प्रकाशन सन् 2005

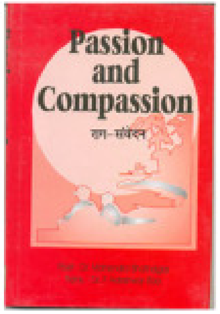

कविताएँ

1 राग-संवेदन / 1
2 ममत्व
3 यथार्थ
4 लमहा
5 निरन्तरता
6 नहीं
7 अपेक्षा
8 चिर-वंचित
9 जीवन्त
10 अतिचार
11 पूर्वाभास
12 अवधूत
13 सार-तत्त्व
14 निष्कर्ष
15 तुलना
16 अनुभूति
17 आह्लाद
18 आसक्ति
19 मंत्र-मुग्ध
20 हवा
21 जिजीविषु
22 राग-संवेदन / 2
23 वरदान
24 स्मृति
25 बहाना
26 दूरवर्ती से
27 बोध
28 श्रेयस
29 संवेदना
30 दो ध्रुव
31 विपत्ति-ग्रस्त
32 विजयोत्सव
33 हैरानी
34 समता-स्वप्न
35 अपहर्ता
36 दृष्टि
37 परिवर्तन
38 युगान्तर

39 प्रार्थना
40 प्रबोध
41 सुखद
42 बदलो
43 बचाव
44 पहल
45 अद्भुत
46 स्वप्न
47 यथार्थता
48 खिलाड़ी
49 सिफ़त
50 बोध-प्राप्ति

(1) राग-संवेदन / 1

सब भूल जाते हैं ...
केवल
याद रहते हैं
आत्मीयता से सिक्त
कुछ क्षण राग के,
संवेदना अनुभूत
रिश्तों की दहकती आग के!
आदमी के आदमी से
प्रीति के सम्बन्ध
जीती-भोगती सह-राह के
अनुबन्ध!
केवल याद आते हैं!
सदा।

जब-तब
बरस जाते
व्यथा-बोझिल
निशा के
जागते एकान्त क्षण में,
डूबते निस्संग भारी
क्लान्त मन में!
अश्रु बन
पावन!

(2) ममत्व

न दुर्लभ हैं
न हैं अनमोल
मिलते ही नहीं
इहलोक में, परलोक में
आँसू .... अनूठे प्यार के,
आत्मा के
अपार-अगाध अति-विस्तार के!

हृदय के घन-गहनतम तीर्थ से
इनकी उमड़ती है घटा,
और फिर ....
जिस क्षण
उभरती चेहरे पर
सत्त्व भावों की छटा
हो उठते सजल
दोनों नयन के कोर,
पोंछ लेता अंचरा का छोर!

(3) यथार्थ

राह का
नहीं है अंत
चलते रहेंगे हम!

दूर तक फैला अँधेरा
नहीं होगा ज़रा भी कम!

टिमटिमाते दीप-से
अहर्निश
जलते रहेंगे हम!

साँसें मिली हैं
मात्र गिनती की
अचानक एक दिन
धड़कन हृदय की जायगी थम!
समझते-बूझते सब
मृत्यु को छलते रहेंगे हम!

हर चरण पर
मंज़िलें होती कहाँ हैं?
ज़िन्दगी में
कंकड़ों के ढेर हैं
मोती कहाँ हैं?

(4) लमहा

एक लमहा
सिर्फ़ एक लमहा
एकाएक छीन लेता है
        ज़िन्दगी!
हाँ, फ़क़त एक लमहा।

हर लमहा
अपना गूढ़ अर्थ रखता है,
अपना एक मुकम्मिल इतिहास
        सिरजता है,
बार - बार बजता है।

इसलिए ज़रूरी है
हर लमहे को भरपूर जियो,
जब-तक
कर दे न तुम्हारी सत्ता को
        चूर - चूर वह।

हर लमहा
ख़ामोश फिसलता है
एक-सी नपी रफ़्तार से
अनगिनत हादसों को
अंकित करता हुआ,
अपने महत्त्व को
घोषित करता हुआ!

●

(5) निरन्तरता

हो विरत ...
एकान्त में,
जब शान्त मन से
भुक्त जीवन का
सहज करने विचारण
झाँकता हूँ

आत्मगत
अपने विलुप्त अतीत में

चित्रावली धुँधली
उभरती है विशृंखल ...
        भंग-क्रम
संगत-असंगत
तारतम्य-विहीन!

औचक फिर
स्वतः मुड़
लौट आता हूँ
उपस्थित काल में!
जीवन जगत जंजाल में!

●

(6) नहीं

लाखों लोगों के बीच
अपरिचित अजनबी
भला,
कोई कैसे रहे!

उमड़ती भीड़ में
अकेलेपन का दंश
भला,
कोई कैसे सहे!

असंख्य आवाज़ों के
शोर में
किसी से अपनी बात
भला,
कोई कैसे कहे!

●

(7) अपेक्षा

कोई तो हमें चाहे
गाहे-ब-गाहे!

निपट सूनी
अकेली ज़िन्दगी में,
गहरे कूप में बरबस
ढकेली ज़िन्दगी में,
निष्ठुर घात-वार-प्रहार
झेली ज़िन्दगी में,
कोई तो हमें चाहे,
सराहे!
किसी की तो मिले
शुभकामना / सद्‌भावना!

अभिशाप झुलसे लोक में
सर्वत्र छाये शोक में
हमदर्द हो
कोई कभी तो!

तीव्र विद्युन्मय
दमित वातावरण में
बेतहाशा गूँजती जब
मर्मवेधी
चीख-आह-कराह,
अतिदाह में जलती
विध्वंसित ज़िन्दगी
आबद्ध कारागाह!

ऐसे तबाही के क्षणों में
चाह जगती है कि
कोई तो हमें चाहे
भले,
गाहे-ब-गाहे!

(8) चिर-वंचित

जीवन - भर
रहा अकेला,
अनदेखा -
सतत उपेक्षित
घोर तिरस्कृत!

जीवन - भर
अपने बलबूते
झंझावातों का रेला
झेला !
जीवन - भर
जस-का-तस
ठहरा रहा झमेला !

जीवन - भर
असह्य दुख - दर्द सहा,
नहीं किसी से
भूल शब्द एक कहा!
अभिशापों तापों
दहा - दहा!

रिसते घावों को
सहलाने वाला
कोई नहीं मिला
पल - भर नहीं थमी
सर - सर वृष्टि - शिला!

एकाकी
फाँकी धूल
अभावों में
घर में : नगरों-गाँवों में!
यहाँ - वहाँ
जानें कहाँ - कहाँ!

(9) जीवन्त

दर्द समेटे बैठा हूँ!
रे, कितना-कितना
दुःख समेटे बैठा हूँ!
बरसों-बरसों का दुख-दर्द
समेटे बैठा हूँ!

रातों-रातों जागा,
दिन-दिन भर जागा,
सारे जीवन जागा!
तन पर भूरी-भूरी गर्द
लपेटे बैठा हूँ!

दलदल-दलदल
पाँव धँसे हैं,
गर्दन पर, टख़नों पर
नाग कसे हैं,
काले-काले ज़हरीले
नाग कसे हैं!

शैया पर
आग बिछाए बैठा हूँ!
धायँ-धायँ!
दहकाए बैठा हूँ!

(10) अतिचार

अर्थहीन हो जाता है
सहसा
चिर-संबंधों का विश्वास -
नहीं, जन्म-जन्मान्तर का विश्वास!
अरे, क्षण-भर में
मिट जाता है
वर्षों-वर्षों का होता घनीभूत
अपनेपन का अहसास!

ताश के पत्तों जैसा
बाँध टूटता है जब
मर्यादा का,
स्वनिर्मित सीमाओं को
आवेष्टित करते विद्युत-प्रवाह-युक्त तार
तब बन जाते हैं
निर्जीव अचानक!
लुप्त हो जाती हैं सीमाएँ,
छलाँग भर-भर फाँद जाते हैं
स्थिर पैर,
डगमगाते काँपते हुए
स्थिर पैर!
भंग हो जाती है
शुद्ध उपासना
कठिन सिद्ध साधना!
धर्म-विहित कर्म
खोखले हो जाते हैं,
तथाकथित सत्य-प्रतिज्ञाएँ
झुठलाती हैं।
बेमानी हो जाते हैं
वचन-वायदे!
और
प्यार बन जाता है
निपट स्वार्थ का समानार्थक!
अभिप्राय बदल लेती हैं
व्याख्याएँ
पाप-पुण्य की,
छल -
आत्माओं के मिलाप का
नग्न सत्य में / यथार्थ रूप में
उतर आता है!
संयम के लौह-स्तम्भ
टूट ढह जाते हैं,
विवेक के शहतीर स्थान-च्युत हो
तिनके की तरह
डूब बह जाते हैं।

जब भूकम्प वासना का
'तीव्रानुराग' का
आमूल थरथरा देता है शरीर को,
हिल जाती हैं मन की
हर पुख़्ता-पुख़्ता चूल!
आदमी
अपने अतीत को, वर्तमान को, भविष्य को
जाता है भूल!

●

(11) पूर्वाभास

बहुत पीछे
छोड़ आये हैं
प्रेम-संबंधों
शत्रुताओं के
अधजले शव!

खामोश है
बरसों, बरसों से
तड़पता / चीखता
दम तोड़ता रव!

इस समय तक -
सूख कर अवशेष
खो चुके होंगे
हवा में!
बह चुके होंगे
अनगिनत
बारिशों में!

जब से छोड़ आया
लौटा नहीं;
फिर, आज यह क्यों
प्रेत छाया
सामने मेरे?

शायद,
हश्र अब होना
यही है
मेरे समूचे
अस्तित्व का!

हर ज्वालामुखी को
एक दिन
सुप्त होना है!
सदा को
लुप्त होना है!

●

(12) अवधूत

लोग हैं
ऐसी हताशा में
व्यग्र हो
कर बैठते हैं आत्म-हत्या!
या
खो बैठते हैं संतुलन
तन का / मन का!
व हो विक्षिप्त
रोते हैं - अकारण!
हँसते हैं - अकारण!

किन्तु तुम हो
स्थिर / स्व-सीमित / मौन / जीवित / संतुलित
अभी तक!

वस्तुतः जिसने जी लिया संन्यास
मरना और जीना
एक है उसके लिए!
विष हो या अमृत
पीना
एक है उसके लिए!

●

(13) सार-तत्त्व

सकते में क्यों हो,
अरे!
नहीं आ सकते
जब काम
किसी के तुम -
        कोई क्यों आये
        पास तुम्हारे?
चुप रहो,
सब सहो!
        पड़े रहो
        मन मारे,
        यहाँ-वहाँ!

कोई सुने
तुम्हारे अनुभव,
कोई सुने
तुम्हारी गाथा,
        नहीं समय है
        पास किसी के!
निष्फल -
ऐसा करना
आस किसी से!

अच्छा हो
सूने कमरे की दीवारों पर
शब्दांकित कर दो,
नाना रंगों से
चित्रांकित कर दो
अपना मन!
शायद, कोई कभी
पढ़े / गुने!
या
किसी रिकॉर्डिंग-डेक में
भर दो

अपनी करुण कहानी
बख़ुद ज़बानी!
शायद, कोई कभी
सुने!

लेकिन
निश्चिन्त रहो
कहीं न फैले दुर्गन्ध
इसलिए तुरन्त
लोग तुम्हें
गड्ढ़े में गाड़ / दफ़न
या
कर सम्पन्न दहन
विधिवत्
कर देंगे ख़ाक / भस्म
        ज़रूर!
विधिवत्
पूरी कर देंगे
आख़िरी रस्म
        ज़रूर!

(14) निष्कर्ष

ऊहापोह
(जितना भी)
        ज़रूरी है।
विचार-विमर्श
हो परिपक्व जितने भी समय में।

तत्त्व-निर्णय के लिए
अनिवार्य
मीमांसा-समीक्षा / तर्क / विशद विवेचना
प्रत्येक वांछित कोण से।

क्योंकि जीवन में
हुआ जो भी घटित -

वह स्थिर सदा को,
एक भी अवसर नहीं उपलब्ध
भूल-सुधार को।

सम्भव नहीं
किंचित बदलना
कृत-क्रिया को।

सत्य -
कर्ता और निर्णायक
तुम्हीं हो,
पर नियामक तुम नहीं।
निर्लिप्त हो
परिणाम या फल से।
(विवशता)

सिद्ध है
जीवन : परीक्षा है कठिन
पल-पल परीक्षा है कठिन।

वीक्षा करो
हर साँस गिन-गिन,
जो समक्ष
उसे करो स्वीकार
अंगीकार!

(15) तुलना

जीवन
कोई पुस्तक तो नहीं
कि जिसे
सोच-समझ कर
योजनाबद्ध ढंग से
लिखा जाए / रचा जाए!उसकी विषयवस्तु को
क्रमिक अध्यायों में
सावधानी से बाँटा जाए,

मर्मस्पर्शी प्रसंगों को छाँटा जाए!

स्व-अनुभव से, अभ्यास से
सुन्दर व कलात्मक आकार में
ढाला जाए,
शैथिल्य और बोझिलता से बचा कर
चमत्कार की चमक में उजाला जाए!

जीवन की कथा
स्वतः बनती-बिगड़ती है
पूर्वापर संबंध नहीं गढ़ती है!

कब क्या घटित हो जाए
कब क्या बन-सँवर जाए,
कब एक झटके में
सब बिगड़ जाए!

जीवन के कथा-प्रवाह में
कुछ भी पूर्व-निश्चित नहीं,
अपेक्षित-अनपेक्षित नहीं,
कोई पूर्वाभास नहीं,
आयास-प्रयास नहीं!

ख़ूब सोची-समझी
शतरंज की चालें
दूषित संगणक की तरह
चलने लगती हैं,
नियंत्रक को ही
छलने लगती हैं
जीती बाज़ी
हार में बदलने लगती है!

या अचानक
अदृश्य हुआ वर्तमान
पुनः उसी तरतीब से
उतर आता है

भूकम्प के परिणाम की तरह!
अपने पूर्ववत् रूप-नाम की तरह!

●

(16) अनुभूति

जीवन-भर
अजीबोगरीब मूर्खताएँ
करने के सिवा,
समाज का
थोपा हुआ कर्ज़
भरने के सिवा,
क्या किया?

ग़लतियाँ कीं
ख़ूब ग़लतियाँ कीं,
चूके
बार-बार चूके!

यों कहें -
जिये;
लेकिन जीने का ढंग
कहाँ आया?
(ढोंग कहाँ आया!)
और अब सब-कुछ
भंग-रंग
हो जाने के बाद
दंग हूँ,
बेहद दंग हूँ!
विवेक अपंग हूँ!

विश्वास किया
लोगों पर,
अंध-विश्वास किया
अपनों पर!
और धूर्त
साफ़ कर गये सब

घर-बार,
बरबाद कर गये
जीवन का
रूप-रंग सिँगार!

छद्म थे, मुखौटे थे,
सत्य के लिबास में
झूठे थे,
अजब ग़ज़ब के थे!

ज़िन्दगी गुज़र जाने के बाद,
नाटक की
फल-प्राप्ति / समाप्ति के क़रीब,
सलीब पर लटके हुए
सचाई से रू-ब-रू हुए जब
अनुभूत हुए
असंख्य विद्युत-झटके
तीव्र अग्नि-कण!
ऐंठते
दर्द से आहत
तन-मन!

हैरतअंगेज़ है, सब!
सब, अद्‌भुत है!
अस्तित्व कहाँ हैं मेरा,
मेरा बुत है!
अब, पछतावे का कड़वा रस
पीने के सिवा
बचा क्या?
ज़माने को
न थी, न है
रत्ती-भर
शर्म-हया!

●

(17) आह्लाद

बदली छायी
बदली छायी!

दिशा-दिशा में
बिजली कौंधी,
मिट्टी महकी
सोंधी-सोंधी!

युग-युग
विरह-विरस में डूबी,
एकाकी घबरायी ऊबी,
अपने प्रिय जलधर से
मिल कर,
हाँ, हुई सुहागिन
धन्य धरा,
मेघों के रव से
शून्य भरा!

वर्षा आयी
वर्षा आयी!
उमड़ी
शुभ घनघोर घटा,
छायी
श्यामल दीप्त छटा!

दुलहिन झूमी
घर-घर घूमी
मनहर स्वर में
कजली गायी!
बदली छायी
वर्षा आयी!

(18) आसक्ति

भोर होते
द्वार वातायन झरोखों से
उचकतीं-झाँकतीं उड़तीं
मधुर चहकार करतीं
सीधी सरल चिड़ियाँ
जगाती हैं,
उठाती हैं मुझे!
रात होते
निकट के पोखरों से
आ - आ
कभी झींगुर; कभी दर्दुर
गा - गा
सुलाते हैं,
नव-नव स्वप्न-लोकों में
घुमाते हैं मुझे!
दिन भर -
रँग-बिरंगे दृश्य-चित्रों से
मोह रखता है
अनंग-अनंत नीलाकाश!
रात भर
नभ-पर्यंक पर
रुपहले-स्वर्णिम सितारों की छपी
चादर बिछाए
सोती ज्योत्स्ना
कितना लुभाती है!
अंक में सोने बुलाती है!

ऐसे प्यार से
मुँह मोड़ लूँ कैसे?
धरा - इतनी मनोहर
छोड़ दूँ कैसे?

(19) मंत्र-मुग्ध

गहन पहेली,
ओ लता - चमेली!

अपने
फूलों में / अंगों में
इतनी मोहक सुगन्ध
अरे,
कहाँ से भर लायीं!

ओ श्वेता!
ओ शुभ्रा!
कोमल सुकुमार सहेली!
इतना आकर्षक मनहर सौन्दर्य
कहाँ से हर लायीं!
        धर लायीं!
सुवास यह
बाहर की, अन्तर की
तन की, आत्मा की
जब-जब
        करता हूँ अनुभूत
भूल जाता हूँ
        सांसारिकता,
        अपना अता-पता!

कुछ क्षण को इस दुनिया में
खो जाता हूँ,
तुमको एकनिष्ठ
        अर्पित हो जाता हूँ!

ओ सुवासिका!
ओ अलबेली!
ओ री, लता - चमेली!

●

(20) हवा

ओ प्रिय
सुख-गंध भरी
        मदमत्त हवा!
मेरी ओर बहो
        हलके-हलके!

बरसाओ
मेरे
तन पर, मन पर
        शीतल छींटें जल के!

ओ प्यारी
लहर-लहर लहराती
उन्मत्त हवा!
निःसंकोच करो
बढ़ कर उष्ण स्पर्श
        मेरे तन का!

ओ, सर-सर स्वर भरती
मधुरभाषिणी
        मुखर हवा!
चुपके-चुपके
मेरे कानों में
अब तक अनबोला
कोई राज़ कहो
        मन का!
आओ!
मुझ पर छाओ!
खोल लाज-बंध
        आज
आवेष्टित हो जाओ,
आजीवन
अनुबन्धित हो जाओ!

●

(21) जिजीविषु

अचानक
आज जब देखा तुम्हें
कुछ और जीना चाहता हूँ!

गुज़र कर
बहुत लम्बी कठिन सुनसान
जीवन-राह से,
प्रतिपल झुलस कर
ज़िन्दगी के सत्य से
उसके दहकते दाह से,
अचानक
आज जब देखा तुम्हें -

कड़वाहट भरी इस ज़िन्दगी में
विष और पीना चाहता हूँ!
कुछ और जीना चाहता हूँ!

अभी तक
प्रेय!
कहाँ थीं तुम?
नील-कुसुम!

●

(22) राग-संवेदन / 2

तुम
बजाओ साज़
दिल का,
ज़िन्दगी का गीत
मैं
गाऊँ!

उम्र यों
ढलती रहे,
उर में
धड़कती साँस यह
चलती रहे!
दोनों हृदय में
स्नेह की बाती लहर
बलती रहे!
जीवन्त प्राणों में
परस्पर
भावना - संवेदना
पलती रहे!

तुम
सुनाओ
इक कहानी प्यार की
मोहक,
सुन जिसे
मैं
चैन से
कुछ क्षण
कि सो जाऊँ!
दर्द सारा भूल कर
मधु-स्वप्न में
बेफ़िक्र खो जाऊँ!

तुम
बहाओ प्यार-जल की
छलछलाती धार,
चरणों पर तुम्हारे
स्वर्ग - वैभव
मैं
झुका लाऊँ!

●

(23) वरदान

याद आता है
तुम्हारा प्यार!

तुमने ही दिया था
एक दिन
मुझको
रुपहले रूप का संसार!

सज गये थे
द्वार-द्वार सुदर्श
बन्दनवार!

याद आता है
तुम्हारा प्यार!
प्राणप्रद उपहार!

●

(24) स्मृति

याद आते हैं
तुम्हारे सांत्वना के बोल!

आया
टूट कर
दुर्भाग्य के घातक प्रहारों से
तुम्हारे अंक में
पाने शरण!

समवेदना अनुभूति से भर
ओ, मधु बाल!
भाव-विभोर हो
तत्क्षण
तुम्हीं ने प्यार से
मुझको
सहर्ष किया वरण!

दी विष भरे आहत हृदय में
शान्ति मधुजा घोल!
खड़ीं
अब पास में मेरे,
निरखतीं
द्वार हिय का खोल!

याद आते हैं
प्रिया!
मोहन तुम्हारे
सांत्वना के बोल!

●

(25) बहाना

याद आता है
तुम्हारा रूठना!
मनुहार-सुख
अनुभूत करने के लिए,
एकरसता-भार से
ऊबे क्षणों में
रंग जीवन का
नवीन अपूर्व
भरने के लिए!

याद आता है
तुम्हारा रूठना!
जन्म-जन्मान्तर पुरानी
प्रीति को
फिर-फिर निखरने के लिए,
इस बहाने
मन-मिलन शुभ दीप
आँगन-द्वार
धरने के लिए!

याद आता है
तुम्हारा रूठना!

अपार-अपार भाता है
तुम्हारा रागमय
बीते दिनों का रूठना!

●

(26) दूरवर्ती से

शेष जीवन
जी सकूँ सुख से
तुम्हारी याद
काफ़ी है!

कभी
कम हो नही
अहसास जीवन में
तुम्हारा
यह बिछोह-विषाद
काफ़ी है!

तुम्हारी भावनाओं की
धरोहर को
सहेजा आज-तक
मन में,
अमरता के लिए
केवल उन्हीं का
सरस गीतों में
सहज अनुवाद
काफ़ी है!

●

(27) बोध

भूल जाओ
मिले थे हम
कभी!
चित्र जो अंकित हुए
सपने थे
सभी!

भूल जाओ
रंगों को
बहारों को,
देह से : मन से
गुज़रती
कामना-अनुभूत धारों को!

भूल जाओ -
हर व्यतीत-अतीत को,
गाये-सुनाये
गीत को : संगीत को!

●

(28) श्रेयस्

सृष्टि में वरेण्य
एक-मात्र
स्नेह-प्यार भावना!
मनुष्य की
मनुष्य-लोक मध्य,
सर्व जन-समष्टि मध्य
राग-प्रीति भावना!

समस्त जीव-जन्तु मध्य
अशेष हो
मनुष्य की दयालुता!
यही महान श्रेष्ठतम उपासना!
विश्व में
हरेक व्यक्ति
रात-दिन / सतत
यही करे पवित्र प्रकर्ष साधना!

व्यक्ति-व्यक्ति में जगे
यही
सरल-तरल अबोध निष्कपट
एकनिष्ठ चाहना!

●

(29) संवेदना

काश, आँसुओं से मुँह धोया होता,
बीज प्रेम का मन में बोया होता,
दुर्भाग्यग्रस्त मानवता के हित में
अपना सुख, अपना धन खोया होता!

(30) दो ध्रुव

स्पष्ट विभाजित है
जन-समुदाय
समर्थ / असहाय।
हैं एक ओर
भ्रष्ट राजनीतिक दल
उनके अनुयायी खल,
सुख-सुविधा-साधन-सम्पन्न
प्रसन्न।
धन-स्वर्ण से लबालब
आरामतलब / साहब और मुसाहब!
बँगले हैं / चकले हैं,
तलघर हैं / बंकर हैं,
भोग रहे हैं
जीवन की तरह-तरह की नेमत,
हैरत है, हैरत!

दूसरी तरफ़
जन हैं
भूखे-प्यासे दुर्बल, अभावग्रस्त ... त्रस्त,
अनपढ़,
दलित असंगठित,
खेतों - गाँवों / बाज़ारों - नगरों में
श्रमरत,
शोषित / वंचित / शंकित!

(31) विपत्ति-ग्रस्त

बारिश
थमने का नाम नहीं लेती,
जल में डूबे
गाँवों-क़स्बों को
थोड़ा भी
आराम नहीं देती!
सचमुच,
इस बरस तो क़हर ही
टूट पड़ा है,
देवा, भौचक खामोश
खड़ा है!

ढह गया घरौंधा
छप्पर-टप्पर,
बस, असबाब पड़ा है
औंधा!

आटा-दाल गया सब बह,
देवा, भूखा रह!

इंधन गीला
नहीं जलेगा चूल्हा,
तैर रहा है चौका
रहा-सहा!
घन-घन करते
नभ में वायुयान
मँडराते
गिद्धों जैसे!
शायद,
नेता / मंत्री आये
करने चेहलक़दमी,
उत्तर-दक्षिण
पूरब-पश्चिम
छायी

ग़मी-ग़मी!

अफ़सोस
कि बारिश नहीं थमी!

●

(32) विजयोत्सव

एरोड्रोम पर
विशेष वायुयान में
पार्टी का
लड़ैता नेता आया है,

'शताब्दी' से
स्टेशन पर
कांग्रेस का
चहेता नेता आया है,

'ए-सी एम्बेसेडर' से
सड़क-सड़क,
दल का
जेता नेता आया है,

भरने जयकारा,
पुरज़ोर बजाने
सिंगा, डंका, डिंडिम,

पहुँचा
हुर्रा-हुर्रा करता
सैकड़ों का हुजूम!

पालतू-फालतू बकरियों का,
शॉल लपेटे सीधी मूर्खा भेड़ों का,

संडमुसंड जंगली वराहों का,
बुज़दिल भयभीत सियारों का!

में-में करता
गुर्रा-गुर्रा हुंकृति करता
करता हुआँ-हुआँ!

चिल्लाता -
लूट-लूट,
प्रतिपक्षी को ....
शूट-शूट!
जय का जश्न मनाता
'गब्बर' नेता का!

●

(33) हैरानी

कितना ख़ुदग़रज़
हो गया इंसान!
बड़ा ख़ुश है
पाकर तनिक-सा लाभ -
बेच कर ईमान!

चंद सिक्कों के लिए
कर आया
शैतान को मतदान,
नहीं मालूम
'ख़ुददार' का मतलब
गट-गट पी रहा अपमान!

रिझाने मंत्रियों को
उनके सामने
कठपुतली बना निष्प्राण,
अजनबी-सा दीखता -
आदमी की
खो चुका पहचान!

●

(34) समता-स्वप्न

विश्व का इतिहास
साक्षी है

अभावों की
धधकती आग में
        जीवन
        हवन जिनने किया,
अन्याय से लड़ते
व्यवस्था को बदलते
पीढ़ियों
यौवन
दहन जिनने किया,

वे ही
छले जाते रहे
प्रत्येक युग में,
क्रूर शोषण-चक्र में

अविरत
दले जाते रहे
प्रत्येक युग में!

विषमता
और ...
        बढ़ती गयी,
बढ़ता गया
विस्तार अन्तर का!
        हुआ धनवान
        और साधनभूत,
        निर्धन -
        और निर्धन,
        अर्थ गौरव हीन,
        हतप्रभ दीन!

लेकिन;
विश्व का इतिहास
साक्षी है

परस्पर
साम्यवाही भावना इंसान की
निष्क्रिय नहीं होगी,
न मानेगी पराभव!

लक्ष्य तक पहुँचे बिना
होगी नहीं विचलित,
न भटकेगा / हटेगा
एक क्षण
अवरुद्ध हो लाचार
समता-राह से मानव!

●

(35) अपहर्ता

धूर्त
सरल दुर्बल को
ठगने
धोखा देने
        बैठे हैं तैयार!

धूर्त
लगाये घात,
छिपे
इर्द-गिर्द
        करने गहरे वार!
धूर्त
फ़रेबी कपटी
        चौकन्ने
करने छीना-झपटी,
लूट-मार
हाथ-सफ़ाई
चतुराई

या
सीधे मुष्टि-प्रहार!

धूर्त
हड़पने धन-दौलत
पुरखों की वैध विरासत
हथियाने माल-टाल
कर दूषित बुद्धि-प्रयोग!

धृष्ट,
दुःसाहसी,
निडर!
बना रहे
छद्म लेख-प्रलेख!
चमत्कार!
विचित्र चमत्कार !

(36) दृष्टि

जीवन के कठिन संघर्ष में
हारो हुओ!
हर क़दम
दुर्भाग्य के मारो हुओ!
असहाय बन
रोओ नहीं,
गहरा अँधेरा है,
चेतना खोओ नहीं!

पराजय को
विजय की सूचिका समझो,
अँधेरे को
सूरज के उदय की भूमिका समझो!

विश्वास का यह बाँध
फूटे नहीं!
नये युग का सपन यह

टूटे नहीं!
भावना की डोर यह
छूटे नहीं!

(37) परिवर्तन

मौसम
कितना बदल गया!
सब ओर कि दिखता
नया-नया!

सपना
जो देखा था
साकार हुआ,
अपने जीवन पर
अपनी क़िस्मत पर
अपना अधिकार हुआ!

समता का
बोया था जो बीज-मंत्र
पनपा,
छतनार हुआ!
सामाजिक-आर्थिक
नयी व्यवस्था का आधार बना!

शोषित-पीड़ित जन-जन जागा,
नवयुग का छविकार बना!

साम्य-भाव के नारों से
नभ-मंडल दहल गया!
मौसम
कितना बदल गया!

(38) युगान्तर

अब तो
धरती अपनी,
अपना आकाश है!

सूर्य उगा
लो फैला सर्वत्र
प्रकाश है!

स्वाधीन रहेंगे
सदा-सदा
पूरा विश्वास है!

मानव-विकास का चक्र
न पीछे मुड़ता
साक्षी इतिहास है!

यह
प्रयोग-सिद्ध
तत्व-ज्ञान
हमारे पास है!

(39) प्रार्थना

सूरज,
ओ, दहकते लाल सूरज!

बुझे
मेरे हृदय में
ज़िन्दगी की आग
        भर दो!
थके निष्क्रिय
तन को
स्फूर्ति दे
गतिमान कर दो!

सुनहरी धूप से,
आलोक से -
परिव्याप्त
हिम / तम तोम
        हर लो!

सूरज,
ओ लहकते लाल सूरज!

●

(40) प्रबोध

नहीं निराश / न ही हताश!

सत्य है-
गये प्रयत्न व्यर्थ सब
नहीं हुआ सफल,
किन्तु हूँ नहीं
        तनिक विकल!

बार-बार
हार के प्रहार
शक्ति-स्रोत हों,
कर्म में प्रवृत्त मन
ओज से भरे
सदैव ओत-प्रोत हों!

हों हृदय उमंगमय,
स्व-लक्ष्य की
रुके नहीं तलाश!
भूल कर
रुके नहीं कभी
अभीष्ट वस्तु की तलाश!
        हो गये निराश / तय विनाश!
        हो गये हताश / सर्वनाश!

●

(41) सुखद

सहधर्मी / सहकर्मी
खोज निकाले हैं
दूर - दूर से
आस - पास से
और जुड़ गया है
        अंग - अंग
सहज
किन्तु / रहस्यपूर्ण ढंग से
अटूट तारों से,
        चारों छोरों से
        पक्के डोरों से!

अब कहाँ अकेला हूँ ?
कितना विस्तृत हो गया अचानक
        परिवार आज मेरा यह!
जाते - जाते
कैसे बरस पड़ा झर - झर
विशुद्ध प्यार घनेरा यह!

नहलाता आत्मा को
        गहरे - गहरे!
लहराता मन का
रिक्त सरोवर
        ओर - छोर
        भरे - भरे!

●

(42) बदलो!

सड़ती लाशों की
दुर्गन्ध लिए
छूने
गाँवों-नगरों के
ओर-छोर

        जो हवा चली
        उसका रुख़ बदलो!

ज़हरीली गैसों से
अलकोहल से
लदी-लदी
गाँवों-नगरों के
नभ-मंडल पर
        जो हवा चली
        उससे सँभलो!
        उसका रुख़ बदलो!

●

(43) बचाव

कैसी चली हवा!

हर कोई
केवल
हित अपना
        सोचे,
औरों का हिस्सा
        हड़पे,
कोई चाहे कितना
        तड़पे!
घर भरने अपना
औरों की
बोटी-बोटी काटे
        नोचे!

इस
संक्रामक सामाजिक
        बीमारी की
क्या कोई नहीं दवा?
कैसी चली हवा!

●

(44) पहल

घबराए
डरे-सताए
मोहल्लों में / नगरों में / देशों में
यदि -
सब्र और सुकून की
बहती
सौम्य-धारा चाहिए,
आदमी-आदमी के बीच पनपता
यदि -
प्रेम-बंध गहरा भाईचारा चाहिए,

तो
विवेकशून्य अंध-विश्वासों की
कन्दराओं में
अटके-भटके
आदमी को
इंसान नया बनना होगा।
युगानुरूप
नया समाज-शास्त्र
विरचना होगा!

तमाम
खोखले अप्रासंगिक
मज़हबी उसूलों को,
आडम्बरों को
त्याग कर
वैज्ञानिक विचार-भूमि पर
नयी उन्नत मानव-संस्कृति को
गढ़ना होगा।
अभिनव आलोक में
पूर्ण निष्ठा से
नयी दिशा में
बढ़ना होगा!

इंसानी रिश्तों को
सर्वोच्च मान कर
सहज स्वाभाविक रूप में
ढलना होगा,
स्थायी शान्ति-राह पर
आश्वस्त भाव से
अविराम अथक
चलना होगा!

कल्पित दिव्य शक्ति के स्थान पर
'मनुजता अमर सत्य'
कहना होगा!
सम्पूर्ण विश्व को
परिवार एक
जान कर , मान कर
परस्पर मेल-मिलाप से
रहना होगा!

वर्तमान की चुनौतियों से
जूझते हुए
जीवन वास्तव को
चुनना होगा!
हर मनुष्य की
राग-भावना, विचारणा को
गुनना-सुनना होगा!

●

(45) अद्भुत

आदमी
अपने से पृथक धर्म वाले
आदमी को
प्रेम-भाव से लगाव से
क्यों नहीं देखता?
उसे ग़ैर मानता है,
अक्सर उससे वैर ठानता है!
अवसर मिलते ही

अरे, ज़रा भी नहीं झिझकता
        देने कष्ट,
चाहता है देखना उसे
जड-मूल-नष्ट!

देख कर उसे
तनाव में
        आ जाता है,
सर्वत्र
दुर्भाव प्रभाव
        घना छा जाता है!

ऐसा क्यों होता है?
क्यों होता है ऐसा?

कैसा है यह आदमी?
गज़ब का
आदमी अरे, कैसा है यह?
ख़ूब अजीबोगरीब मज़हब का
        कैसा है यह?
सचमुच,
डरावना बीभत्स काल जैसा!

जो - अपने से पृथक धर्म वाले को
मानता-समझता
केवल ऐसा-वैसा!

●

(46) स्वप्न

पागल सिरफिरे
किसी भटनागर ने
माननीय प्रधान-मंत्री .... की
हत्या कर दी,
भून दिया गोली से!!

ख़बर फैलते ही
लोगों ने घेर लिया मुझको -
'भटनागर है,
मारो ... मारो ... साले को!
हत्यारा है ... हत्यारा है!'

मैंने उन्हें बहुत समझाया
चीख़-चीख कर समझाया -
भाई, मैं वैसा 'भटनागर' नहीं!
अरे, यह तो फ़कत नाम है मेरा,
उपनाम (सरनेम) नहीं!

मैं
'महेंद्रभटनागर हूँ,
या 'महेंद्र' हूँ
भटनागर-वटनागर नहीं,
भई, कदापि नहीं!
ज़रा, सोचो-समझो।

लेकिन भीड़ सोचती कब है?
तर्क सचाई सुनती कब है?
सब टूट पड़े मुझ पर
और राख कर दिया मेरा घर!!

इतिहास गवाही दे
किन-किन ने / कब-कब / कहाँ-कहाँ
झेली यह विभीषिका,
यह जुल्म सहा?
कब-कब / कहाँ-कहाँ
दरिन्दगी की ऐसी रौ में
मानव समाज
हो पथ-भ्रष्ट बहा?

वंश हमारा
धर्म हमारा
जोड़ा जाता है क्यों

नामों से, उपनामों से?
कोई सहज बता दे
ईसाई हूँ या मुस्लिम
या फिर हिन्दू हूँ
(कार्यस्थ एक,
शूद्र कहीं का!)
कहा करे कि
'नाम है मेरा - महेंद्रभटनागर,
जिसमें न छिपा है वंश, न धर्म!'
(न और कोई मर्म!)

अतः कहना सही नहीं -
'क्या धरा है नाम में!'
अथवा
'जात न पूछो साधु की!'
हे कबीर!
क्या कोई मानेगा बात तुम्हारी?
आख़िर,
कब मानेगा बात तुम्हारी?

'शिक्षित' समाज में,
'सभ्य सुसंस्कृत' समाज में
आदमी - सुरक्षित है कितना?
आदमी - अरक्षित है कितना?
हे सर्वज्ञ इलाही,
दे, सत्य गवाही!

(47) यथार्थता

जीवन जीना
दूभर - दुर्वह
भारी है!
मानों
दो - नावों की
विकट सवारी है!

पैरों के नीचे
विष - दग्ध दुधारी आरी है,
कंठ - सटी
अति तीक्ष्ण कटारी है!

गल - फाँसी है,
हर वक़्त
बदहवासी है!

भगदड़ मारामारी है,
ग़ायब
पूरनमासी,
पसरी सिर्फ़
घनी अँधियारी है!

जीवन जीना
लाचारी है!
बेहद भारी है!

(48) खिलाड़ी

दौड़ रहा हूँ
बिना रुके / अविश्रांत
निरन्तर दौड़ रहा हूँ!
दिन - रात
रात - दिन
हाँफ़ता हुआ
बद-हवास,
जब-तब
गिर-गिर पड़ता
उठता,
धड़धड़ दौड़ निकलता!
लगता है -
जीवन - भर
अविराम दौड़ते रहना
मात्र नियति है मेरी!

समयान्तर की सीमाओं को
तोड़ता हुआ
अविरल दौड़ रहा हूँ!

बिना किये होड़ किसी से
निपट अकेला,
देखो
किस क़दर तेज़ और तेज़
दौड़ रहा हूँ!

तैर रहा हूँ
अविरत तैर रहा हूँ
दिन - रात
रात - दिन
इधर - उधर
झटकता - पटकता
हाथ - पैर
हारे बग़ैर,
बार - बार
फिचकुरे उगलता
तैर रहा हूँ!
यह ओलम्पिक का
ठंडे पानी का तालाब नहीं,
खलबल खौलते
गरम पानी का
भाप छोड़ता
तालाब है!
कि जिसकी छाती पर
उलटा -पुलटा
विरुद्ध - क्रम
देखो,
कैसा तैर रहा हूँ!
अगल - बगल
और - और
तैराक़ नहीं हैं
केवल मैं हूँ

मत्स्य सरीखा
लहराता तैर रहा हूँ!
लगता है -
अब, ख़ैर नहीं
कब पैर जकड़ जाएँ
कब हाथ अकड़ जाएँ।
लेकिन, फिर भी तय है
तैरता रहूंगा, तैरता रहूंगा!
क्योंकि
ख़ूब देखा है मैंने
लहरों पर लाशों को
उतराते ... बहते!

कूद - कूद कर
लगा रहा हूँ छलाँग
ऊँची - लम्बी
तमाम छलाँग-पर-छलाँग!
दिन - रात
रात - दिन
कुंदक की तरह
उछलता हूँ
बार - बार
घनचक्कर-सा लौट-लौट
फिर - फिर कूद उछलता हूँ!

तोड़ दिये हैं पूर्वाभिलेख
लगता है
पैमाने छोटे पड़ जाएंगे!
उठा रहा हूँ बोझ
एक-के-बाद-एक
भारी और अधिक भारी
और ढो रहा हूँ
यहाँ - वहाँ
दूर - दूर तक
इस कमरे से उस कमरे तक
इस मकान से उस मकान तक

इस गाँव-नगर से उस गाँव-नगर तक
तपते मरुथल से शीतल हिम पर
समतल से पर्वत पर!

लेकिन
मेरी हुँकृति से
थर्राता है आकाश - लोक,
मेरी आकृति से
भय खाता है मृत्यु-लोक!
तय है
हारेगा हर हृदयाघात,
लुंज पक्षाघात
अमर आत्मा के सम्मुख!
जीवन्त रहूंगा
श्रमजीवी मैं,
जीवन-युक्त रहूंगा
उन्मुक्त रहूंगा!

●

(49) सिफ़त

यह
आदमी है
हर मुसीबत
झेल लेता है!
विरोधी आँधियों के
दृढ़ प्रहारों से,
विकट विपरीत धारों से
निडर बन
खेल लेता है!

उसका वेगवान् अति
गतिशील जीवन-रथ
कभी रुकता नही,
चाहे कहीं धँस जाय या फँस जाय;
अपने
बुद्धि-बल से / बाहु-बल से

वह बिना हारे-थके
अविलम्ब पार धकेल लेता है!

यह
आदमी है / संयमी है
आफ़तें सब झेल लेता है!

●

(50) बोध-प्राप्ति

परिपक्व
कड़वे अनुभवों ने ही
बनाया है मुझे!

आदमी की क्षुद्रताओं ने
सही जीना
सिखाया है मुझे!
विश्वासघातों ने
मोह से कर मुक्त
भेद जीवन का
बताया है मुझे!

ज़माने ने सताया जब
बेइंतिहा,
काव्य में पीड़ा
तभी तो गा सका,

मर्माहत हुआ
अपने-परायों से
तभी तो मर्म
जीवन का / जगत् का
पा सका!

●